रजम की सज़ा

(विवाहित मर्द या औरत पर ज़िना (व्यभिचार) का जुर्म साबित होने पर उसे पत्थरों से मार कर हिलाक करने की सज़ा का बयान सही हदीसों में आया है। इसे 'रजम' करना कहते हैं। इस लेख में लेखक ने इसी विषय पर चर्चा की है। यह लेख मौलाना अमीन अहसन इस्लाही की तफ़सीर *तदब्बुर–ए–कुरआन* में इस विषय पर हुई चर्चा के परिप्रेक्ष्य में लिखा गया है।)

ज़िना की सज़ा के बारे मे जो निश्चित आदेश कुरआन की सूरह '*नूर*' में आया है, उसमें साफ़ तौर से फ़रमाया गया है कि ज़िना का अपराधी मर्द हो या औरत, उनमें से हर एक को सौ कोड़े मारे जाएंगे। इसमें शक नहीं कि कुरआन का यह आदेश व्याख्या चाहता है, लेकिन फक़ीहों ने इसकी जो व्याख्याएं की हैं उनमें हनफ़ी फ़क़ीहों के नज़दीक यह सज़ा केवल कुंवारे अपराधियों के लिए है, विवाहित अपराधियों के लिए सज़ा सुन्नत से साबित होती है जिसके अनुसार ज़िना के विवाहित अपराधियों को रजम की सज़ा दी जाएगी। विवाहित अपराधियों की सज़ा के बारे में यही बात इमाम शाफ़िई और इमाम मालिक की फ़िक़्ह में है। रहे अविवाहित अपराधी तो इमाम शाफ़िई, इमाम अहमद, इमाम दाऊद, इस्हाक़ बिन राहविया, सुफ़ियान सोरी, हसन बिन स्वालेह और इब्ने अबी लैला उनकी सज़ा का आधार भी सुन्नत को ही बनाते हैं और वह उनकी राय के अनुसार मर्द व औरत दोनों के लिए सौ कोड़े और एक साल के लिए निर्वासित करना (देस से निकाल देना) है। इमाम मालिक और इमाम औज़ाई भी कुंवारे मर्दों के लिए सौ कोड़े और एक साल के लिए देस निकाला की सज़ा मानते हैं। इमाम अहमद, इस्हाक़ बिन राहविया और दाऊद ज़ाहिरी विवाहित अपराधियों के मामले में भी यह राय रखते हैं कि उन्हें कुरआन के आदेश अनुसार सौ कोड़े भी मारे जाएंगे और सुन्नत का अनुसरण करते हुए रजम भी किया जाएगा।

इस मामले पर ग़ौर करने से यह बात समझ में आती है कि इन फ़क़ीहों ने कुरआन की बताई गयी सज़ा को सुन्नत के आधार पर बढ़ा दिया है या उसे कुंवारे अपराधी के लिए ही ख़ास माना है। फक़ीहों के एक वर्ग के नज़दीक यह ''तख़्सीस'' है और दूसरा वर्ग इसे ''नस्ख़'' मानता है। इस फ़र्क़ की वजह यह है कि पहला वर्ग तख़्सीस शब्द का जो मतलब समझता है दूसरा वर्ग उसी के लिए नस्ख़ शब्द स्तेमाल करता है, और दूसरा वर्ग जिस चीज़ को नस्ख़ कहता है उसके बहुत से रूपों के लिए दूसरे वर्ग के यहां तख़्सीस की शब्दावली स्तेमाल होती है। अब इसे चाहे नस्ख़ कहें या तख़्सीस, इसके लिए तर्क चूंकि सुन्नत से दिया जाता है इस वजह से हमारे नज़दीक एक सवाल यह पैदा होता है कि क्या सुन्नत से कुरआन के किसी आदेश में इस तरह का बदलाव हो सकता है? शब्दावलियों का फ़र्क़ छोड़ कर देखा जाए तो फ़क़ीहों ने इस सवाल का सकारात्मक जवाब दिया है यानी यह कि हां हो सकता है। लेकिन इन फ़क़ीहों में से हर एक ने अपने इस दृष्टिकोण के लिए अक़ल के आधार पर और नक़ल (मिसाल) के आधार पर तर्क दिए हैं। इसलिए यह सैद्धांतिक बात है कि तर्क आधारित बात को मानने या रद करने का फ़ैसला भी तर्क आधारित होगा। तर्क मज़बूत है तो हर उस आदमी को जो सच्चाई के साथ सत्य तक पहुंचने की इच्छा रखता है उसे मान लेना चाहिए और तर्क अगर कमज़ोर है तो सत्य तक पहुंचने की इमानदारी के साथ इच्छा रखने वाले को यह हक़ है कि वह उस तर्क को न माने चाहे यह तर्क किसी ने भी दिया हो। तर्क के जवाब में तर्क को स्वीकार किया जाना चाहिए क्योंकि तर्क किसी ख़ास वर्ग के लिए या ख़ास युग के लिए नहीं है। पहले के लोगों को अगर एक सिद्धांत बनाने का अधिकार था तो हमें भी तर्क के आधार पर उस सिद्धांत

को ग़लत साबित करने का अधिकार है। केवल कुरआन और सुन्नत ही वो चीज़ें हैं जिन पर कोई टिप्पणी नहीं की जा सकती। और उनको समझने व समझाने का हक़ हर उस आदमी को होना चाहिए जो अपने अन्दर इसकी योग्यता पैदा कर ले। जो लोग हम से पहले आए वो भी इंसान थे और हम भी इंसान हैं और इंसानों में से केवल पैग़म्बर ही यह हक़ रखते हैं कि उनकी बात बिना चूं चरा मानी जाए। दीन को समझने की कोशिश करने वाले एक विद्यार्थी की हैसियत से हम यह बात ज़ोर दे कर कह सकते हैं कि हम ने इन महान हस्तियों के इल्म की महानता और व्यापकता का ध्यान रखते हुए उनकी किताबों का अध्यन किया है और इस विषय से सम्बंधित वो सारी चीज़ें पढ़ी हैं जो इस विषय में मौलिक महत्व रखती हैं, लेकिन चूंकि ये सब हस्तियां पैग़म्बर नहीं थीं, इसलिए उनके तर्कों की मज़बूती और कमज़ोरी की समीक्षा करने की हमने कोशिश की है। वर्षों के अध्ययन और चिंतन के बाद, इन हस्तियों के मान सम्मान के बावजूद, हम यह कहने पर मजबूर हैं कि अपने इस दृष्टिकोण के समर्थन में जितने तर्क उन्होंने दिए हैं, वो सब तार्किक ग़लतियों पर आधारित और बहुत ही कमज़ोर हैं। इस वजह से हमारे नज़दीक यह सिद्धांत कि सुन्नत कुरआन के आदेशों में किसी तरह का बदलाव कर सकती है, अक़ल व नक़ल दोनों के लिहाज़ से ठीक नहीं है।

रजम की सज़ा के बारे में फ़क़ीहों ने अपने तर्कों का अधार चूंकि इस सिद्धांत को बनाया है इस वजह से हमारे विचार में बहतर यही है कि उनकी कुछ दूसरी बातों पर टिप्पणी या आलोचना से पहले इस सिद्धांत की ग़लती स्पष्ट कर दी जाए, क्योंकि मूल बात की समीक्षा होने के बाद आगे की बात पर विवेचना की ज़रूरत नहीं रहेगी।

सुन्नत और कुरआन का आपसी सम्बंध

सुन्नत कुरआन के बाद दीन का दूसरा निश्चित स्रोत है। हमारे नज़दीक भी यह एक ऐसा सिद्धांत है जिसका इंकार नहीं किया जा सकता। कुरआन इस मामले में बिल्कुल साफ़ तरीक़े से बताता है कि मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के आदेश व निर्देशों का पालन क़ियामत तक के लिए उसी तरह लाज़मी है जिस तरह कुरआन के आदेशों का पालन लाज़मी है। मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम महज़ ख़ुदा का पैग़ाम पहुंचा देने वाली हस्ती नहीं थे कि अल्लाह की किताब पहुंचा देने के बाद उनका काम ख़त्म हो गया हो। रसूल की हैसियत से आपकी हर बात और हर काम अपने आप में क़ानूनी हुज्जत और प्रमाण का दर्जा रखता है। कुरआन में आपकी यह हैसियत बयान कर दी गयी है। कोई व्यक्ति जब तक साफ़ साफ़ कुरआन का इंकार न कर दे उसके लिए सुन्नत की इस क़ानूनी हैसियत के चौलेंज करना मुमकिन नहीं है। कुरआन ने साफ़ शब्दों में कहा है कि जीवन के हर मामले में रसूल के हर आदेश का बिना चूं चरा पालन करना चाहिए।

''और हमने जो रसूल भी भेजा है इसी लिए भेजा है कि अल्लाह की इजाज़त से उसका अनुपालन किया जाए।'' (4:64)।

सुन्नत के ये आदेश दो तरह के मामलों से सम्बंधित हो सकते हैः एक वो जिनमें कुरआन बिल्कुल ख़ामोश है और उस सम्बंध में कोई बात कुरआन में साफ़ तरीक़े से या इशारे में भी कही नहीं गयी है, और दूसरे वो मामले जिनमें कुरआन ने करने या न करने का कोई हुक्म या नियम दिया है। पहली तरह के मामलों में

अगर सुन्नत के ज़रिए से कोई आदेश या नियम हमें मिले तो उसके बारे में सैद्धांतिक रूप से किसी तुलनात्मक विवेचना का सवाल नहीं है। इस तरह के मामलों में सुन्नत खुद ही वास्तविक स्रोत का दर्जा रखती है। इन मामलों में हमारा काम बस यह हो सकता है कि हम उनका अर्थ व मंशा समझने की कोशिश करें और निःसंकोच उस पर अमल करें। रहे दूसरी तरह के मामले, यानी वो जिनमें कुरआन मजीद ने कोई निर्देश या नियम बयान किया है तो उनके बारे में यह बात बिल्कुल निश्चित है कि सुन्नत न तो कुरआन के किसी निर्देश और किसी नियम को मंसूख़ (निरस्त) कर सकती है और न उसमें किसी तरह का कोई बदलाव कर सकती है। सुन्नत कुरआन के निर्देश को स्पष्ट और व्यवहारिक रूप देने के लिए है उसमें बदलाव करने के लिए नहीं है। कुरआन के किसी आदेश निर्देश में बदलाव की बात कोई साधारण बात नहीं है कि अक़्ल से अंदाज़े व अनुमान लगा कर उसके बारे में कुछ कहा जाए। अगर यह बात कही या मानी जाए कि सुन्नत से कुरआन के निर्देश में बदलाव हो सकता है तो इसके लिए खुद कुरआन से कोई स्पष्ट सुबूत देना चाहिए। इससे कम दर्जे की किसी चीज़ से सुन्नत की यह हैसियत साबित नहीं की जा सकती। अगर यह कहा जाए कि सुन्नत को कुरआन के किसी निर्देश के नस्ख़ करने या उसमें बदलाव करने का हक़ नहीं मिला हुआ है तो इसके लिए केवल यही तर्क काफ़ी है कि कुरआन से यह बात साबित नहीं है। हर वह आदमी जो सुन्नत के लिए इस अधिकार का दावा करता है उसकी यह ज़िम्मेदारी है कि वह यह बताए कि यह अधिकार कुरआन से साबित है या खुद उसने अपने आप ही इस बात को मान लिया है। सुन्नत के लिए इस अधिकार को अगर उसने खुद ही मान लिया है तो उसका यह कहना दीन में कोई महत्व नहीं रखता। और अगर वह इसे कुरआन से होने का दावा करता है तो उसे यह साबित करना होगा। पहले के लोगों ने इस दावे को अक़्ल व नक़्ल (मिसाल) आधारित जिन तर्कों पर सही माना है उनकी ग़लती इस विवेचना में आगे सामने आ जाएगी। यहां अभी इतनी बात कहना है कि मामले प्राकृतिक नियमों के हों या शरीअत के नियमों के, खुदा की बादशाही में जिस किसी को भी कोई शक्ति या अधिकार मिला हुआ है उसके लिए इस अधिकार को हर हाल में कुरआन से ही पेश किया जाएगा। किसी के क़ौल (कथन) से न कोई ऐसा अधिकार आप किसी के लिए साबित कर सकते हैं जो उसे कुरआन ने नहीं दिया और न किसी ऐसे अधिकार को नकार सकते हैं जो कुरआन से उसके लिए साबित हो। कुरआन के एक विद्यार्थी की हैसियत से हम यह बात निःसंकोच कह सकते हैं कि सुन्नत के लिए इस तरह का कोई अधिकार कुरआन में किसी जगह बयान नहीं हुआ है। इसके विपरीत कुरआन में साफ़ तरीक़े से कहा गया है कि रसूल कुरआन के शब्द व अर्थ में कोई बदलाव या बढ़ोतरी नहीं कर सकते। वह इस बात के पाबन्द हैं कि जो कलाम उनकी तरफ़ उतारा गया है उसे दूसरों तक पहुंचाने के साथ साथ वह खुद भी हर हाल में उसके निर्देशों का पालन करें। कुरआन में हैः

''कह दो मैं यह हक़ नहीं रखता कि अपनी तरफ़ से इस कुरआन में कोई संशोधन करूं। मैं तो बस उस चीज़ का पालन करता हूं जो मेरी तरफ़ वह्यि की जाती है।'' (यूनुसः10:15)।

इस आयत के बारे में आलिमों ने कुछ बाते कही हैं जिनका जवाब हम आगे की विवेचना में देंगे, यहां इतनी बात स्पष्ट रहना चाहिए कि सुन्नत के लिए कुरआन के निर्देशों में बदलाव का अधिकार किसी सकारात्मक तर्क से ही साबित किया जा सकता है। यह और इस अर्थ की दूसरी आयतों को विचाराधीन मुद्दे पर तर्क के रुप में स्वीकार करने से इंकार करना इस बात के लिए पर्याप्त नहीं है कि सुन्नत के लिए इस तरह का अधिकार साबित किया जा सके। कुरआन ज़मीन व आसमान के बादशाह का कलाम है। कुरआन में ही जगह जगह कुरआन की यह हैसियत बताई गयी है कि कुरआन *''अलफ़ुरक़ान''* यानी कसौटी है। कोई चीज़ इस कसौटी का फ़ैसला नहीं करती बल्कि यह कसौटी ही हर उस चीज़ का फ़ैसला करती है जो इस

ज़मीन पर खुदा या खुदा के किसी पैग़म्बर के नाम से जोड़ी जाती है। रसूल उसके आदोशों का पालन करने वाले हैं वह इन आदेशों में किसी बदलाव या संशोधन के पात्र नहीं हैं।

नस्ख़ व तर्मीम (निरस्त करने या संशोधन करने) का अधिकार न होने को मानने के बाद इस सम्बंध में ज़्यादा से ज़यादा जो बात कही जा सकती है वह यह है कि सुन्नत कुरआन की 'तबयीन' कर सकती है यानि कुरआन के अर्थ को खोल कर बता सकती है। इसके लिए जो आयत तर्क के रूप में पेश की जाती है वह यह हैः

''*और हम ने तुम पर यह ज़िक्र उतारा है ताकि तुम उस चीज़ को स्पष्ट करो जो उनकी तरफ़ उतारी गयी है।*'' (16:44)

आयत का अर्थ यह है कि सृष्टि को बनाने वाले ने अपना यह फ़रमान सिर्फ़ इसलिए पैग़म्बर के माध्यम से उतारा है कि पैग़म्बर लोगों के लिए इसको खोल कर बयान करें। मतलब यह हुआ कि कुरआन के पैग़ाम को स्पष्ट करना पैग़म्बर की ज़िम्मेदारी भी है जो उनकी दी गयी है और यह उनका इख़्तियार या अधिकार भी है जिसका उन्हें पात्र बनया गया है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि पैग़म्बर अल्लाह की तरफ़ से किताब को खोल कर बयान करने के काम पर नियुक्त किए गए हैं। पैग़म्बर और कुरआन का यही वह सम्बंध है जिसे मशहूर किताब ''*अलमवाफ़िक़ात*'' के लेखक इमाम शातिबी ने इस तरह बयान किया हैः

''सुन्नत या तो कुरआन का बयान होगी या उसमें कुछ और जोड़ने वाली होगी। अगर वह बयान है तो उसका दर्जा उस चीज़ के बाद है जिसका वह बयान है, और अगर वह बयान नहीं है तो उसकी मान्यता तभी होगी जब वह चीज़ जिसका ज़िक्र उसमें हो रहा हो कुरआन में न पाई जाए।'' (4/6)।

शातिबी के इस बयान से साफ़ है कि सुन्नत हर उस मामले में जिसमें कुरान मजीद ख़ामोश है, खुद अपने आप में क़ानून का स्रोत बनती है, लेकिन अगर कोई चीज़ कुरआन में ज़िक्र की गयी है तो सुन्नत केवल उसको स्पष्ट कर सकती है। इस तरह के मामलों में इससे ज़्यादा कोई अधिकार सुन्नत को नहीं है।

कुरआन के सम्बंध में सुन्नत के इस अधिकार को स्पष्ट करने के बाद अब ग़ौर करने वाली बात केवल यह रह जाती है कि इस 'तबयीन' (व्याख्या) का मतलब क्या है? इसकी सम्पूर्ण तार्किक परिभाषा क्या है? और इस परिभाषा के हिसाब से क्या चीज़ 'तबयीन' कही जा सकती है और किस चीज़ को तबयीन नहीं कहा जा सकता?

तबयीन का अर्थ

'तबयीन' अरबी भाषा का एक मशहूर शब्द है। यह एक क्रिया है जिसका अर्थ है बयान करना या स्पष्ट करना। यह शब्द जब अपने ऑब्जेक्ट के साथ आए तो इसका अर्थ केवल बयान कर देना भी होता है और स्पष्ट करना भी। विचाराधीन आयत में यह ''*मा नुज़्ज़िलः इलैहिम*'' (जो उनकी तरफ़ उतारी गयी) के साथ जोड़ कर स्तेमाल हुआ है। इसलिए यहां इसका अर्थ होगा स्पष्ट करना, यही अर्थ आम तौर से लोगों ने लिया भी है। इस तरह इसका अर्थ वही होगा जो उर्दू में ''शरह'' शब्द का होता है (यानि कुंजी)। इस अर्थ में यह शब्द कुरआन में भी स्तेमाल हुआ है और अरब शायरों के कलाम में भी। सूरह '*बक़रह*' में जहां बनी

इस्राईल को गाय ज़िब्ह करने का हुक्म दिया गया है उस का अध्ययन करने से मालूम होता है कि यहूदी चूंकि अल्लाह के इस हुक्म पर अमल करने से बच रहे थे इसलिए उन्होंने *''अन तज़बहु बक़रह''* (गाय ज़िब्ह करो) के हुक्म को जिस में 'बक़रह' शब्द नकरह (अनिश्चित या अनिर्धारित) होने की वजह से यह बात बिल्कुल साफ़ थी कि उन्हें कोई सी भी गाय काटने को कहा गया था, अपनी शरारती मानसिकता की वजह से ऐसे लिया जैसे कि बात साफ़ न हो और अल्लाह से उसकी पहचान बताने के लिए कहने लगे। इसके लिए उन्होंने यही 'बय्यिन' शब्द स्तेमाल किया। कुरआन में यह सवाल जवाब इस तरह नक़ल किए गए हैः

''और वह बात याद करो जब मूसा ने अपनी क़ौम से कहाः अल्लाह तुम्हें हुक्म देते हैं कि एक गाय ज़िब्ह करो। कहने लगेः तुम हमारा मज़ाक़ उड़ा रहे हो! मूसा ने कहा मैं अल्लाह की पनाह मांगता हूं कि जाहिलों जैसी बात करूं। बोलेः अपने रब से गुहार करो कि हमारे लिए बय्यिन (स्पष्ट) कर दें कि गाय कैसी हो, मूसा ने कहाः अल्लाह फ़रमाते हैं कि वह गाय न बूढ़ी हो न बछिया, बीच की उम्र की हो, तो जो तुम्हें कहा जा रहा है वह करो। कहने लगेः अपने रब से कहो कि स्पष्ट करें कि उसका रंग कैसा हो। मूसा न कहाः वह फ़रमाते हैं कि वह ज़र्द (सुनहरी) रंग की हो, ऐसी चमकीली हो कि देखने वालों का जी खुश हो जाए। फिर कहने लगेः अपने रब से गुहार करो वह बय्यिन (बिल्कुल स्पष्ट) कर दें कि कैसी गाय चाहिए। हमें गाय की पहचान करने में शक हो रहा है, और अल्लाह ने चाहा तो अब के से हम समझ लेंगे। मूसा ने जवाब दियाः वह फ़रमाते हैं कि वह गाय काम करने वाली, ज़मीन जोतने वाली और खेतों के लिए पानी खींचने वाली न हो। पूरे शरीर की, साफ़ सुथरी हो। बोलेः तुम ने बात साफ़ कर दी। फिर उन्होंने उसे ज़िब्ह किया, और वो ऐसा करने को आमादा नहीं थे।'' (बक़रहः 2 67–71)।

अरब का शायर आअशा मेमून बिन क़ैस, अलक़मा बिन अलासा और आमिर बिन तुफ़ैल के बीच झगड़े में अलक़मा की निन्दा और आमिर की प्रशंसा करते हुए कहता हैः

''बेशक वह बात जिसमें तुम मतभेद कर रहे थे, हर सुनने वाले और आगे बताने वाले के लिए बय्यिन (स्पष्ट) कर दी गयी है।''

इसी शायर का एक और शेअर हैः

''क़सम है उस हस्ती की जिसने महीनों को अंदाज़ा करने का प्रतीक बनाया, फिर उनका आधा भी बय्यिन कर दिया और उनकी शुरूआत को भी।''

कुरआन और अरब शायरों के कलाम की इन मिसालों से साफ़ पता चलता है कि 'तबयीन' शब्द किसी मामले की हक़ीक़त को खोल देने, किसी कलाम की मंशा को समझाने और किसी चीज़ के गुप्त पहलुओं को सामने लाने के अर्थ में बोला जाता है। यहूदियों ने जब कलाम के साफ़ मतलब से बिदक कर यह जताने की कोशिश की कि वह तो बस रब की मंशा मालूम करना चाहते हैं तो इसके लिए बार बार यही शब्द स्तेमाल किया। आअशा जिस की प्रशंसा करता है उसके अन्दर कुछ खूबियां थीं लेकिन विरोधियों ने जब उन्हें मानने से इंकार कर दिया और आअशा ने उनमें से एक एक को तर्क से खोल कर बयान कर दिया और वह खूबिया सबके सामने आ गयीं तो उसने इसे तबयीन कहा। दुनिया को बनाने वाले ने साल को महीनों में और महीनों को दिनों में बांटा तो उसका एक शुरूआती सिरा भी हुआ और एक आधी अवधि भी हुई, लेकिन दिनों के उलट फेर की वजह से जब इस शुरूआत और आधी अवधि के अनजानेपन में

जाने की आशंका हुई तो चांद की मंज़िलों से उसकी 'तबयीन' कर दी गयी। मानो तबयीन कोई ऐसी चीज़ नहीं होती जिसे बाहर से लाकर किसी बात, किसी मामले या किसी कलाम के उपर लाकर चिपका दिया जाए। वह किसी बात का वह मौलिक तत्व है जो उसमें मौजूद होता है लेकिन उसे स्पष्ट करके दिखाने की ज़रूरत होती है। यही तबयीन की हक़ीक़त है। सूरह नहल आयत में यह शब्द अल्लाह के कलाम के लिए स्तेमाल हुआ है इस वजह से वहां इसका मतलब इसके सिवा कुछ और नहीं है कि जिसका कलाम है उसकी वह मंशा स्पष्ट कर दी जाए जो कलाम में ही मौजूद है।

तबयीन की परिभाषा

तबयीन के इस शाब्दिक अर्थ को पूरी तरह समझते हुए अगर उसकी परिभाषा निर्धारित करना हो तो हम कह सकते हैः

''तबयीन किसी कलाम के वाचक की उस मंशा की अभिव्यक्ति है जिसे दूसरों तक पहुंचाने के लिए वह इस कलाम को पहली बार अस्तित्व में लाया था।''

यही वह मतलब है जिसके लिए हम उर्दू भाषा में 'शरह' (यानी कुंजी) शब्द बोलते हैं। शरह बस शरह है। इस शब्द को किसी ऐसी बात पर ही फ़िट किया जा सकता है जिसके बारे में यह साबित हो सके कि वह वास्तव में इस कलाम के वाचक की मंशा है। अगर किसी कलाम के सम्बंध में कोई बात कही जाए और फिर यह दावा किया जाए कि यह उस कलाम की शरह है तो केवल इस दावे के आधार पर ही उसे उस कलाम की शरह नहीं मान लिया जाएगा बल्कि इस दावे के लिए तर्क और सुबूत देना होगा। यह देखा जाएगा कि जो बात उस कलाम के वाचक की तरफ़ जोड़ी जा रही है क्या उसके शब्द अपने अर्थ के लिहाज़ से इस पर फ़िट बैठते हैं और इस बात को साबित करते हैं। क्या उसके जुमलों की बनावट ऐसी ही होना चाहिए। क्या जुमलों के परिवेश और परिप्रेक्ष्य के आधार पर यह अर्थ लिया गया है। क्या यह वाचक की अपनी शैली है कि इस तरह के शब्द जब वह बोलता है तो इससे उसका अभिप्राय वही होता है जो यहां लिया जा रहा है। क्या इस दावे को मान लेना कामन सेंस से लाज़मी है। किसी कलाम के सम्बंध में किसी बात को 'शरह' या 'तबयीन' कहा जाए तो इस बात को साबित करने के लिए इन तर्कों में से कोई तर्क आप को देना ही होगा। इस तरह के किसी तर्क के बग़ैर कोई बात शरह नही कही जा सकती है, न तबयीन कही जा सकती है। शरह व तबयीन के शब्द अपने अर्थ के लिहाज़ से ही इस तरह का कोई तर्क मांगते हैं। यही वजह है कि कुछ शोधकारो ने तबयीन या बयान की परिभाषा इन शब्दों में की हैः

''बयान वह तर्क है जो सही तर्कपूर्ण बात के द्वारा उस चीज़ कर ज्ञान प्राप्त कराता है जिस पर वह तर्क बनता है। (*कशफ़ुल असरार*, अलाउद्दीन अब्दुल अज़ीज़ 3/105)।

इस विवेचना से यह बात साफ़ हो जाती है कि तबयीन तो बस वाचक की उस मंशा का इज़हार है जो उसके कलाम में पहले से मौजूद होती है। किसी कलाम के अस्तित्व में आने के बाद जो बदलाव भी उस कलाम की तरफ़ जोड़ा जाएगा उसे 'नस्ख़' कहा जाए या बदलाव, उसे तबयीन या बयान या शरह नहीं कहा जा सकता। इसलिए हम देखते हैं कि उसूल (सिद्धांत) का इल्म रखने वाले आलिमों में जिन लोगों की नज़र शब्द की इस हक़ीक़त पर ही है उन्होंने तबयीन की परिभाषा में यह बात पूरी तरह स्पष्ट कर दी है। इमाम बज़ूदी इल्म–ए–उसूल पर अपनी किताब में लिखते हैः

::बयान शब्द उस चीज़ पर फ़िट किया जाता है जिसके द्वारा उस चीज़ का शुरू से ही कलाम में मौजूद होना नज़र आ जाता है। रहा वह बदलाव जो कलाम के मजूद में आने के बाद किया जाए तो वह 'नस्ख़' है। उसे बयान नहीं कहा जा सकता। *कन्ज़ुल वसूल* 212)।

विवेचना का खुलासा

तबयीन शब्द का अर्थ उसकी परिभाषा और उसकी सीमाओं को समझने के बाद यह बात किसी पहलू से भ्रमित नहीं रही कि सुन्नत को जो हैसियत कुरआन ने खुद अपने सम्बंध में दी है, वह शरह करने वाली चीज़ की है। शरह करने वाली चीज़ के रूप में सुन्नत कुरआन के निहितार्थ को खोलती, उसके आम और ख़ास मतलब को बयान करती और उसकी मंशा को स्पष्ट करती है। सुन्नत का यह काम कोई साधारण काम नहीं है। यही वह काम है जिसके नतीजे में दीन का स्वरूप बनता है और जीवन की तरह तरह की परिस्थितियों के साथ उसका सम्बंध बनता है। इस हैसियत से सुन्नत के जो निर्देश व नियम हमें अलग अलग माध्यमों से मालूम होते हैं, उनका अनुसरण, जैसा कि हमने इस विवेचना के शुरू में कहा है, हमारे लिए लाज़मी है और वह भी उसी तरह क़ियामत तक के लिए मानना वाजिब है जिस तरह खुद कुरआन को मानना और उस पर अमल करना वाजिब है। उसूल के आलिमों में से जिन लोगों को अल्लाह ने दीन के समझने की ज़्यादा सूझबूझ दी है उन्होंने सुन्नत के मामले में यही बात कही है। इमाम अहमद बिन हंबल के बारे में रिवायत हैः

''फ़ज़ल बिन ज़्याद कहते हैं कि अहमद बिन हंबल से हदीस '*इन्नस सुन्नत क़ाज़िया*' के बारे में सवाल किया गया तो उन्होंने फ़रमाया मैं यह कहने की जुर्रत नहीं कर सकता कि सुन्नत अल्लाह की किताब पर क़ाज़ी (फ़ैसला करने वाली) है। सुन्नत तो अल्लाह की किताब की शरह (व्याख्या) करती है। फ़ज़ल कहते हैं कि मैं ने उनका यह कहना भी सुना कि सुन्नत कुरआन की किसी बात को मंसूख़ (निरस्त) नहीं कर सकती, कुरआन को सिर्फ़ कुरआन मंसूख़ कर सकता है। (*जामेअ बयानुल इल्म*, इब्न अब्दुल बर्र 2/234)।

यही बात एक दूसरे अंदाज़ में इमाम शातिबी ने ''*अलमवाफ़िक़ात*'' में स्पष्ट की हैः

''सुन्नत के किताब पर क़ाज़ी होने का मतलब यह नहीं है कि उसे किताब पर मुक़द्दम (सर्वोपरि) माना जाए और किताब को उसके मुक़ाबले में छोड़ दिया जाए, बल्कि जो कुछ सुन्नत में बयान किया जाता है वह किताब का मतलब और मंशा होती है। यानि यह कि सुन्नत किताब के निर्देशों के मतलब को समझने के लिए शरह व तफ़सीर की हैसियत रखती है और यही बात कुरआन की आयत *लितुबय्यिनः लिन्नासि मा उंज़िलः इलैहिम* (इंसानों के लिए उस चीज़ को खोलने वाली जो उनकी तरफ़ उतारी गयी है) में स्पष्ट की गयी है।'' (4/7)

इसके बाद इमाम ने हाथ काटने की सज़ा के बारे में कुछ तशरीहों (व्याख्याओं) जैसे शब्द '*यद*' (हाथ) का अर्थ, चुराए गए माल की मात्रा और '*हिर्ज़*' (संरक्षित होने) वग़ैरह की शर्तों का हवाला देते हुए और साफ़ किया है किः

''सुन्नत की यह तशरीह (व्याख्या) वास्तव में आयत का मतलब और मंशा है। हम यह नहीं कहेंगे कि सुन्नत ने यह निर्देश कुरआन के अलावा दिए हैं। जिस तरह कि इमाम मालिक या कोई दूसरे मुफ़स्सिर किसी

आयत या हदीस का अर्थ बयान करते हैं और हम उस अर्थ के अनुसार अमल करते हैं तो हम यह नहीं कह सकते कि हम ने उक्त मुफ़स्सिर के क़ौल (कथन) के अनुसार अमल किया है। इसके बजाए हम यही कहेंगे कि हमारा अमल अल्लाह तआला या अल्लाह के रसूल के क़ौल के मुताबिक है। यही मामला कुरआन की उन तमाम आयतों का है जिनकी तबयीन सुन्नत ने की है। इसलिए सुन्नत के अल्लाह की किताब पर क़ाज़ी होने का अर्थ इसके सिवा कुछ नहीं है कि सुन्नत अल्लाह की किताब की तशरीह करने वाली चीज़ है।'' (4/8)

कुछ तर्कों की समीक्षा

सुन्नत और कुरआन के आपसी सम्बंध के बारे में यह विवेचना हालांकि समझने वालों के लिए काफ़ी है लेकिन फिर भी हुज्जत पूरी करने के लिए हम यहां एक संक्षिप्त समीक्षा उन तर्कों की भी कर लेते हैं जो कुरआन के बयान में सुन्नत से बदलाव को जायज़ कहने वालों ने अपने दृष्टिकोण के समर्थन में दिए हैं।

ये लोग यह कहते हैं कि सुन्नत के जो आदेश निर्देश कुरआन को नासिख़ (काट देने वाले) हैं या उन से कुरआन की मंशा में किसी तरह का बदलाव हो जाता है, वो सब ख़ुफ़िया (पैग़म्बर पर कुरआन के अलावा उतरने वाले संदेश) पर आधारित हैं, इस वजह से वह्यि के द्वारा वह्यि के नस्ख़ (निरस्त) होने या उसकी मंशा में बदलाव को अक़्ल के लिहाज़ से मना (वर्जित) नहीं कहा जा सकता। चुनांचि आयत *''आप कह दीजिए कि यह मेरे बस में नहीं है कि अपनी तरफ़ से उसे बदलूं मैं तो बस उस वह्यि का अनुसरण करता हूं जो मेरी तरफ़ भेजी जाती है''* (10:15) से जो लोग यह दलील देते हैं कि सुन्नत नस्ख़ करने का अधिकार नहीं रखती, उनके जवाब में वो यह कहते हैं कि इसमें तो कोई शक नहीं कि पैग़म्बर कुरआन मजीद की मंशा में अपनी तरफ़ से कोई बदलाव नहीं कर सकते लेकिन यह बदलाव अगर वह ख़ुफ़िया वह्यि के आधार पर करें तो यह न इस आयत के विपरीत है, न अक़्ल से इसको नकारा जा सकता है।

अपनी इस बात को समझाने के लिए वह कहते हैं कि 'वह्यि मत्लू ' (तिलावत की जाने वाली वह्यि यानी कुरआन) और 'वह्यि ग़ैर मत्लू' (कुरआन के अलावा उतरने वाले संदेश) में हालांकि फ़र्क़ है कि कुरआन की वह्यि अल्लाह के अपने शब्दों में उतरती थी और दूसरी वह्यि में केवल मंशा व मतलब दिल में डाला जाता था लेकिन यह फ़र्क़ ऐसा लिहाज़ किए जाने वाला (बुनियादी) फ़र्क़ नहीं है। इस वजह से ख़ुफ़िया वह्यि और कुरआन हक़ीक़त के लिहाज़ से एक ही चीज़ हैं। इसलिए कुरआन से अगर कुरआन की किसी आयत का नस्ख़ (रद) हो सकता है तो ख़ुफ़िया वह्यि से भी उसकी किसी मंशा में बदलाव और उसके किसी निर्देश को रद किया जा सकता है।

ज़ाहिर में यह बात कुछ तार्किक लगती है, लेकिन हक़ीक़त यह है कि जब आदमी ज़रा गहराई से देखता और ग़ौर करता है तो यह समझ में आता है कि सुन्नत से कुरआन में नस्ख़ मानने के विषय में यह तर्क बहुत कमज़ोर है।

ग़ौर करने वाली बात है कि तिलावत की जाने वाली यानि कुरआन की वह्यि और ग़ैर तिलावत वाली यानी कुरआन के अलावा वह्यि का वह फ़र्क़ जो इन बुज़ुर्गों ने खुद भी माना है कि एक में अल्लाह के शब्द उतरते थे और दूसरी में मंशा और मतलब दिल में डाला जाता था, क्या कोई साधारण सा फ़र्क़ है। लेकिन कुछ देर के लिए हम इसे छोड़ देते हैं और देखते हैं कि कुरआन और ख़ुफ़िया वह्यि में क्या केवल यह एक

चीज़ अन्तर करने वाली थी कि इसे लिहाज़ न करने वाला अन्तर बता कर वह्यि से वह्यि के नस्ख़ होने का तर्क अपनाया और सुन्नत से कुरआन के नस्ख़ होने जैसी बात पर सहमत हो गए। कुरआन को समझने वाला हर आलिम इस बात को मानेगा कि कुर्आन अलग अलग कथनों के रूप में, अर्थ के साथ रिवायत किए जाने के तरीक़े पर, उम्मत को नहीं मिला है। खुदा का यह फ़रमान एक लगातार कलाम है जो सूरतों (अध्याय) में विभाजित है और किताब के रूप में संकलित है। इस की हर आयत अपने आगे पीछे की आयत से जुड़ी हुई, अपने परिप्रेक्ष्य में सीमित और सामूहिक रूप से गठित है। इसका क्रम खुद इसे उतारने वाले ने बनाया है और इसकी हिफ़ाज़त की ज़िम्मेदारी भी उसने खुद अपने उपर ली है। यह लगातार क्रम से उम्मत को मिला है। इसे शब्द शब्द पढ़ा गया, सुना गया और आगे बढ़ाया गया है। इसकी हुज्जत 'हुज्जते बालिग़ा' (पूरी तरह प्रमाणित) है और इसके शब्दों व अर्थों की दलील क़तई रुप से निश्चित है। 'कुरआन' शब्द केवल इसी कलाम के लिए बोला जाता है। अल्लाह का कलाम केवल यही है। इसके अलावा कोई भी चीज़ चाहे वह खुफ़िया वह्यि हो या खुली वह्यि हो, न अल्लाह का कलाम है और न उसे कुरआन कहा जा सकता है। खुफ़िया वह्यि के माध्यम से अगर कोई संदेश पैग़म्बर को मिलता है तो वह कुरआन का अंश नहीं बन जाता, उसे पैग़म्बर की हदीस और पैग़म्बर की सुन्नत ही कहा जाता है। यह वो ठोस तथ्य हैं जो न आज के लिए नए हैं, न पिछले ज़मानों में लोग इन से अनजान थे और न उन लोगों की निगाह से औझल रहे होंगे जो सुन्नत से कुरआन के नस्ख़ होने को मानते हैं। 'मतलू' और 'ग़ैर मतलू' (कुरआनी वह्यि और कुरआन के अलावा वह्यि) का फ़र्क़ अगर उनके नज़दीक लिहाज़ करने वाला फ़र्क़ नहीं था तो इतने सारे फ़र्क़ भी तो देखे जाने चाहिएं। इन सारी बातों के आधार पर यह कैसे माना जा सकता है कि कुरआन और खुफ़िया वह्यि बस एक ही चीज़ हैं?

इन हस्तियों ने इसे अक़ल के आधार पर सही समझा है, हालांकि अक़ल के आधार पर यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि खुफ़िया वह्यि से खुली वह्यि को, अर्थ की रिवायत से शब्द की रिवायत को, गुमान वाली बात से निश्चित हदीस को और रसूल के कथन व कर्म से अल्लाह के कलाम को मंसूख़ (रद) किया जा सकता है या उसकी मंशा में कोई बदलाव किया जा सकता है।

कुरआन की हक़ीक़त महज़ इतनी ही नहीं है कि वह तिलावत की जाने वाली वह्यि है। वह तो वह्यि के सिलसिले का निगरां, दीन की दलील, हक़ व बातिल का मानक, अल्लाह और अल्लाह के रूसूलों से जुड़ी हर बात व चीज़ के लिए 'फ़ुर्क़ान' (कसौटी) और ज़मीन पर अल्लाह की 'मीज़ान' (तराजू) है। ''*अल्लाह ही हैं जिन्होंने हक़ के साथ किताब उतारी, यानि मीज़ान नाज़िल की*' (42:17)। हर चीज़ अब इसी तराजू पर तोली जाएगी। उसके लिए कोई चीज़ तराजू (मीज़ान) नहीं है। हर वह आदमी जो कुरआन की इस हैसियत को समझता व जानता है किसी संकोच के बग़ैर यह बात मानेगा कि किसी भी दूसरी वह्यि से चाहे वह खुफ़िया हो या खुली हुई हो अल्लाह की इस मीज़ान में कोई कमी बेशी नहीं की जा सकती। वह यह मानेगा कि कुरआन को सिर्फ़ कुरआन मंसूख़ कर सकता है। कुरआन पर कुरआन से बाहर की कोई चीज़, जब तक वह खुद इसकी इजाज़त न दे, किसी तरह प्रभाव नहीं डाल सकती।

इन हस्तियों का दूसरा तर्क यह है कि 'तबयीन' का अधिकार चूंकि पैग़म्बर को हासिल है और तबयीन का मतलबत स्पष्ट करना है, इसलिए वह अगर कुरआन की किसी आयत को मंसूख़ ठहराते हैं या उसकी मंशा में कोई बदलाव करते हैं तो यह एक तरह से पैग़म्बर के ज़रिए उस आयत के बारे में इस बात की 'तबयीन' है कि उसका हुक्म अब बाक़ी नहीं रहा या उसके मतलब में बदलाव आ गया है।

इस तर्क को कई पहलुओं से बेमतलब समझा जा सकता है लेकिन हमारे पास चूंकि इसके जवाब में कुरआन की ही ठोस दलील मौजूद है, इस वजह से हम दूसरी सब बातों से नज़र हटा कर सिर्फ़ उसे ही पेश करते हैं।

तबयीन का यह इख़्तेयार (अधिकार) जिस आयत में पैग़म्बर के लिए बयान किया गया है, उसके शब्द ये हैः

''और हमने तुम पर भी यह ज़िक्र उतारा है ताकि तुम लोगों पर उस चीज़ को स्पष्ट कर दो जो उनकी तरफ़ उतारी गयी है।'' (अलनहल 16:44)।

ग़ौर कीजिए कि इसमें *''तुबय्यिन''* शब्द (क्रिया) अपने ऑब्जेक्ट *''जो उनकी तरफ़ उतारी गयी''* के साथ मिल कर आया है। अरभी भाषा का जानकार हर आदमी जानता है कि इस रूप में इसका अर्थ न केवल स्पष्ट करना है, न इसे यहां इसके ऑब्जेक्ट *''जो उनकी तरफ़ उतारी गयी''* (यानि कुरआन) के बारे में स्पष्टीकरण के अर्थ में लिया जा सकता है। अरबी भाषा के नियम के हिसाब से अब इसका अर्थ केवल होगा कि तुम लोगों के लिए *''मा नुज़्ज़िला इलैहिमः जो उनकी तरफ़ उतारा गया है''* यानि कुरआन को स्पष्ट करो। हर आदमी समझ सकता है कि 'कुरआन के बारे में स्पष्टीकरण' और 'कुरआन का स्पष्टीकरण' इन दोनों बातों में ज़मीन व आसमानन का अन्तर है। इख़्तेयार अगर कुरआन के बारे में स्पष्टीकरण का है तो बेशक, वह स्पष्टीकरण यह भी हो सकता है कि उसकी कोई आयत मंसूख़ या उसकी कोई मंशा जो उसके शब्दों से साबित है, बदल दी गयी है, लेकिन कुरआन के स्पष्टीकरण का मतलब कुरआन की शरह (खोल कर बताना) ही हो सकता है, और शरह के बारे में हम लिख चुके हैं कि शरह बस शरह है। हर आदमी जानता है कि इस शब्द को किसी ऐसी बात पर ही फ़िट किया जा सकता है जिसके बारे में यह साबित किया जा सके कि वह वास्तव में इस कलाम के वाचक की मंशा है जिसकी तरफ़ उस बात को जोड़ा जा रहा है।

विवेचना का अन्त

सुन्नत और कुरआन के आपसी सम्बंध की इस व्याख्या के बाद अब सूरह नूर की इस आयत को देखें जिसमें ज़िना के अपराधी की सज़ा बयान हुई है। कुरआन का इरशाद हैः

''ज़िना (ना जायज़ सम्भोग) करने वाली औरत और ज़िना करने वाले मर्द, इनमें से हर एक को सौ कोड़े मारो और अल्लाह के क़ानून को लागू करने में उनके साथ नर्मी की कोई भावना तुम्हें न घेर ले, अगर तुम वास्तव में अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखते हो और चाहिए कि इस सज़ा के समय मुसलमानों की एक जमाअत मौजूद रहे।'' (24:2)

उपर इस लेख के शुरू में हम यह बयान कर चुके हैं कि ज़िना की जो सज़ा अल्लाह ने इस आयत में बताई है, उसे फ़क़ीहों ने कुंवारे और कुंवारी के साथ ख़ास समझा है। विवाहित अपराधी मर्द या औरत की सज़ा उनके नज़दीक रजम (पथराव करके मार देना) है और अपनी इस राय के लिए उन्होंने पैग़म्बर मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के उन बहुत से कथनों और व्यवहारिक उदाहरणों को आधार बनाया है जिनसे उनकी खोज के अनुसार यह बात साबित होती है कि पैग़म्बर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने ज़िना के कुछ अपराधियों को कुर्आन के इस आदेश के अनुपालन में सौ कोड़े मारने के बजाए केवल उनके

विवाहित होने की वजह से रजम की सज़ा दी है। फ़क़ीहों की इस राय से सहमत होने के बाद इस आधार पर सूरह नूर की इस आयत की व्याख्या में केवल दो बातें कही जा सकती हैः

एक यह कि '*अज़्ज़ानियतु वज़्ज़ानी* (ज़िना करने वाली औरत और ज़िना करने वाला मर्द) से कुरआन का अभिप्राय केवल कुंवारी औरत और कुंवारा मर्द हैं। कुरआन के ये शब्द विवाहित कुकर्मी औरत और कुकर्मी मर्द पर लागू नहीं होते। पैग़म्बर सल्ल. ने बस इस आयत की तबयीन की है और इसकी वह मंशा जो खुद इस आयत के शब्दों से ज़ाहिर होती हैं खोल कर बता दी है।

दूसरी बात यह कही जा सकती है कि अल्लाह के रसूल सल्ल. ने ज़िना के अपराधी विवाहित औरत और मर्द के अपराध को इस आयत के दायरे से बाहर रखा है और इस तरह इस आयत का वह मतलब जो इसके शब्दों से ज़ाहिर होता है, नहीं है। जो हमारे नज़दीक आयत के अर्थ में बदलाव वाली बात है।

जहां तक इस दूसरी बात का सम्बंध है, हम ने इस डिबेट के शुरू में स्पष्ट रूप से बयान किया है कि सुन्नत से कुरआन के मतलब में किसी तरह का कोई बदलाव नहीं होता है। हम ने लिखा हैः

''सुन्नत कुरआन के किसी निर्देश और नियम को न तो मंसूख़ (रद) कर सकती है और न उसमें किसी तरह का कोई बदलाव कर सकती है। सुन्नत को यह इख़्तेयार (अधिकार) कुरआन ने नहीं दिया है, और अब किसी इमाम या फक़ीह को भी यह हक़ हासिल नहीं है कि वह सुन्नत के लिए यह इख़्तेयार साबित करने की कोशिश करें। कुर्आन के किसी हुक्म में बदलाव या संशोधन कोई साधारण मामला नहीं है कि अक़ल से अंदाज़े लगाकर उसके बारे में कोई बात कही जा सके। सुन्नत को अगर ऐसा कोई अधिकार मिला हुआ है तो इसे साबित करने के लिए कुरआन से कोई स्पष्ट और ठोस सुबूत देना चाहिए। इससे कम दर्जे की किसी चीज़ के द्वारा सुन्नत का यह इख़्तेयार साबित नहीं किया जा सकता। हम अगर यह कहते हैं कि सुन्नत को कुर्आन के किसी निर्देश में बदलाव करने या उसे रद करने इख़्तेयार नहीं है तो इसके लिए सिर्फ़ यह दलील काफ़ी है कि कुर्आन की किसी आयत से भी यह इख़्तेयार साबित नहीं है।''

रही पहली बात, यानि यह कि इसे कुरआन के शब्दों का भावार्थ समझा जाए और उनकी व्याख्या माना जाए तो हम पूरे विश्वास के साथ कह सकते हैं कि अरबी भाषा की शैली में इसके लिए कोई गुंजाइश नहीं है। कुरआन की शब्दावली की जानकारी रखने वाला कोई आदमी इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता कि ''*अज़्ज़ानियतु वज़्ज़ानी*' के शब्दों से महज़ ज़िना की अपराधी कुंवारी औरत और कुंवारा मर्द ही समझे जा सकते हैं। आयत के शब्द अपने शाब्दिक अर्थ के लिहाज़ से इस बात को नकारते हैं। जुमले की संरचना (बनावट या तरकीब) भी इस का साथ नहीं देती। कलाम के परिवेश और परिप्रेक्ष्य से भी यह नहीं लगता। प्रचलन व आदत की कसौटी पर जांच कर भी इसे वाचक की मंशा नहीं कहा जा सकता। अक़ल कहती है कि इस बात का कोई औचित्य नहीं है। ग़रज़ किसी भी लिहाज़ से इसे कुरआन के फ़रमान की 'शरह' व 'तबयीन' समझना मुमकिन नहीं है। इसे अगर शरह कहेंगे तो यह ऐसी ही बात है जैसे बैल को घोड़ा कह दिया जाए। ज़मीन का शब्द आसमान के अर्थ में स्तेमाल किया जाए। सूरज को चांद के अर्थ में बोला जा सकता हो। इसे शरह कहना कुरआन की भाषा शैली का दर्जा कम करना होगा। कुरआन अल्लाह का कलाम है। इसे रसूल सल्ल. की ज़बान पर जारी किया गया जो अरब व अरब से बाहर की दुनिया में सबसे अच्छी ज़बान बोलने वाले थे। यह कलाम ज़मीन पर आसमान की हुज्जत और इंसान के लिए खुदा की अदालत है। कोई व्यक्ति जिसे अरबी भाषा और उसकी शैलियों की कुछ भी जानकारी है, यह बात नहीं कह सकता कि सौ कोड़े की सज़ा अगर केवल ज़िना की अपराधी कुंवारी औरत या ज़िना के अपराधी

कुंवारे मर्द के लिए ख़ास थी तो इस बात को कहने के लिए कुरआन जैसी किताब में यही शब्द *''अज़्ज़ानियतु वज़्ज़ानी ....''* स्तेमाल किए जा सकते हैं बिना किसी तर्क या कारण के, हालांकि कुरआन का यह दावा है कि उस जैसा कलाम न कोई इंसान ला सकता है न कोई जिन्न, और वह 'अरबी मुबीन' (साफ़ समझ में आने वाली अरबी) ज़बान में नाज़िल हुई है।

हम पूरी ज़िम्मेदारी के साथ कहते हैं कि न इस पहली बात के लिए कोई दलील (तर्क) लाई जा सकती है न उस दूसरी बात के लिए किसी के पास कोई हुज्जत है और न किसी तीसरी बात की कोई सम्भावना है। इसलिए फ़क़ीहों की इस राय से सहमत होना हमारे लिए मुमकिन नहीं है। हम बग़ैर किसी संकोच के इसे मानने से इंकार करते हैं और इस इंकार पर तब तक ज़ोर देते रहेंगे जब तक कोई निश्चित बात हमारे इस तर्क के खण्डन में कहीं से पेश नहीं की जाती। कोई आदमी अगर ऐसा कोई तर्क पेश कर देता है तो हम जिस ज़ोर से इसका इंकार कर रहे हैं ख़ुदा ने चाहा तो उसी ज़ोर के साथ इस इंकार से पलट आएंगे।

हमारा दृष्टिकोण यह है कि इस सम्बंध में फ़क़ीहों ने रसूल सल्ल. के फ़रमान और अमल से जो नतीजा निकाला है वह कुरआन के ख़िलाफ़ है जैसा कि हमने तर्कों के आधार पर उपर साबित किया है। और कुरआन के ख़िलाफ़ कोई बात किसी हाल में कुबूल नहीं की जा सकती। जो लोग हमारे इस दृष्टिकोण को सही नहीं समझते हैं उन्हें चाहिए कि वो फ़क़ीहों के इस नतीजे को कुरआन की शरह साबित करें या कुरआन से सुन्नत के लिए यह इख़्तेयार (अधिकार) साबित करें कि उससे कुरआन के हुक्म में बदलाव हो सकता है। इसके बाद उन्हें अपना दृष्टिकोण साबित करने के लिए रिवायतों का ढेर लगाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। वो एक रिवायत भी अगर पेश करेंगे तो हम उसके सामने सर झुकान के लिए तैयार होंगे, लेकिन इस मूल बात को नज़रअंदाज़ करके वो जो कुछ भी फ़रमाएंगे हमारे नज़दीक उसका कोई महत्व नहीं होगा।

रजम की सज़ा के संदर्भ में कुरआन व सुन्नत के आपसी सम्बंध पर जो कुछ हमने लिखा है उसे पढ़ने के बाद यह सवाल इल्म की चाहत रखने वाले हर आदमी के ज़हन में पैदा होता है कि इस विषय में फ़क़ीहों की राय अगर कुरआन के ख़िलाफ़ है तो फिर रजम की उस सज़ा के बारे क्या कहा जाएगा जिसके बारे में मालूम है कि वह रसूल सल्ल. ने भी कुछ अपराधियों को दी और राशिद ख़लीफ़ाओं ने भी। यही सवाल है जिसके जवाब में इस ज़माने के ज़बरदस्त आलिम और शोधकर्ता इमाम हमीदुद्दीन फ़राही ने अपना वह नज़रिया पेश किया जिससे सदियों से चली आ रही यह गुत्थी हल हो जाती है, बल्कि यह बात भी साफ़ हो कर सामने आ जाती है कि पैग़म्बर का कोई निर्देश कभी भी कुरआन के विपरीत नहीं होता। लेकिन इमाम फ़राही की यह बात यहां रखने से पहले हम उन रिवायतों की सच्चाई भी स्पष्ट कर देते हैं जिनसे हमारे फ़क़ीहों ने अपने दृष्टिकोण के समर्थन में तर्क दिए हैं।

रिवायतें (हदीसें)

इस सिलसिले की पहली हदीस जो हज़रत उबादा बिन सामित से चली है, उसे इमाम मुस्लिम ने इन शब्दों में नक़ल किया है:

''रसूल सल्ल. ने फ़रमायाः मुझ से लो, मुझ से लो, मुझ से लो, ज़िना करने वाली औरतों के मामले में अल्लाह ने जो हुक्म नाज़िल करने का वायदा किया था, वह नाज़िल फ़रमा दिया। अविवाहित मर्द द्वारा

अविवाहित औरत से दुष्कर्म के लिए सौ कोड़े और एक साल का देश निकाला और विवाहित मर्द द्वारा विवाहित औरत से दुष्कर्म के लिए सौ कोड़े और रजम।'' (मुस्लिम 4415)

दूसरी रिवायत इमाम मालिक की किताब मौता में इस तरह बायन हुई हैः

''उमर रज़ि. ने फ़रमायाः तुम रजम की आयत का इंकार करके अपने आप को हिलाकत (बर्बादी) में डालने से बचो। ऐसा न हो कि कहने वाले कहें कि हम तो अल्लाह की किताब में दो सज़ाओं (कोड़ों और रजम की सज़ा) का ज़िक्र कहीं नहीं पाते। बेशक, अल्लाह के रसूल सल्ल. ने भी रजम किया और हम ने भी। उस हस्ती की क़सम जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है, मुझे यह डर न होता कि लोग कहेंगे कि उमर ने अल्लाह की किताब में इज़ाफ़ा (बढ़ोतरी) कर दिया तो मैं यह आयत ''बूढ़े ज़ानी और बूढ़ी ज़ानिया को अनिवार्य रूप से रजम कर दो'', कुरआन में लिख देता, इसलिए कि हम ने यह आयत खुद तिलावत की है। (मौता इमाम मालिक 2568)

यही रिवायत बुख़ारी में यूं नक़ल हुई हैः

''(उम रज़ि. ने फ़रमायाः) बेशक, अल्लाह तआला ने मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम को हक़ के साथ भेजा और उन पर किताब उतारी। उसमें आयत रजम भी थी। चुनांचि हमने उसे पढ़ा और समझा और याद किया। फिर अल्लाह के रसूल सल्ल. ने भी इसी आधार पर रजम किया और उनके बाद हमने भी रजम किया। मुजे डर है कि लोगों पर ज़्यादा समय नहीं बीतेगा कि कहने वाले कहेंगे कि हम तो रजम की आयत अल्लाह की किताब में कहीं नहीं पाते और इस तरह अल्लाह के उतारे गए एक फ़र्ज़ को छोड़ कर गुमराह होंगे। याद रखो, रजम अल्लाह की किताब में हर उस मर्द व औरत पर वाजिब है जो शादी के बाद ज़िना करे। (बुख़ारी 6830)

तीसरी रिवायत सुनन नसई में मोमिनों की मां आयशा रज़ि. से इन शब्दों में नक़ल की गयी हैः

''अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने फ़रमायाः मुसलमान का खून (हत्या) केवल तीन परिस्थितियों में हलाल (जायज़) हैः एक शादीशुदा ज़ानी, उसे रजम किया जाएगा। दूसरे वह व्यक्ति जिसने किसी को जानबूझ कर क़त्ल किया हो, उसे उस व्यक्ति के क़िसास (बदले) में क़त्ल किया जाएगा। तीसरा वह व्यक्ति जो इस्लाम छोड़ कर अल्लाह और अल्लाह के रसूल से लड़ाई पर ऊतारू हो, उसे क़त्ल किया जाएगा या सूली दी जाएगी या देश से निकाला जाएगा। (सुनन नसई रक़म 4053)

इस सिलसिले के चौथी रिवायत इब्नुल मंज़र और अब्दुर्रज़्ज़ाक़ ने शब्दों के मामूली से फ़र्क़ के साथ अपनी किताबों में इस तरह नकल़ की हैः

''कुंवारे ज़ानी की सज़ा सौ कोड़े और जिला वतनी (देश निकाला) है। विवाहित ज़ानी को केवल रजम की सज़ा दी जाएगी और बूढ़े ज़ानियों को पहले कोड़े मारे जाएंगे और उसके बाद रजम किया जाएगा। (फ़तहुल बारी, इब्ने हजर 12/157)।

रजम की सज़ा के बारे में यही रिवायतें हैं जो हदीस की किताबों में कई तरीक़ों से बयान हुई हैं। इन पर ग़ौर करके देखते हैः

इन रिवायतों पर ग़ौर करने से पहली बात जो समझ में आती है वह इनका आपसी विरोधाभास है, जिसे न इन पिछली तेरह सदियों में कोई कभी दूर करने में कामयाब हुआ है और न अब हो सकता है। इनमें से पहली रिवायत को देखें तो पता चलता है कि दुष्कर्म की सज़ा में ज़िना करने वाले मर्द और ज़िना करने वाली औरत के विवाहित और अविवाहित होने का अलग अलग एतिबार नहीं होगा बल्कि कोड़े और देस से निकालने की सज़ा केवल उसी स्थिति में दी जाएगी जब अपराधी मर्द और अराधी औरत दोनों कुंवारे हों, और कोड़े व रजम की सज़ा भी उसी स्थिति में लागू होगी जब वो दोनों विवाहित हों। इसी तरह यह बात भी इस रिवायत से मालूम होती है कि बूढ़े विवाहित अपराधियों को रजम की सज़ा देने से पहले सौ कोड़े भी अनिवार्य रूप से मारे जाएंगे। इसके बाद दूसरी रिवायत को देखें तो उसमें विवाहित और अविवाहित का मुद्दा ही सिरे से ख़त्म हो गया है। इसके बिल्कुल विपरीत, जो बात उसमें बयान की गयी है वह यह है कि रजम की सज़ा हक़ीक़त में ज़िना करने वाले बूढ़े मर्द और जिना करने वाली बूढ़ी औरत के लिए है। यह किसी और की दी जाए या न दी जाए उन बेचारों पर तो उसे हर हाल में लागू होना ही चाहिए, लेकिन यही रिवायत जब बुख़ारी में बयान हुई तो उसमें इस सज़ा के लिए फिर विवाह का ज़िक्र हुआ है। तीसरी रिवायत में बूढ़े तो साफ़ बच गए हैं, रजम से पहले सौ कोड़ों की सज़ा भी मआफ़ कर दी गयी है, पहली रिवायत में रजम की सज़ा के लिए विवाहिता से विवाहित के ज़िना की जो शर्त बयान हुई थी, वह भी इसमें ख़त्म हो गयी है। इन सब बातों से नज़र हटा कर देखतें हैं कि, जो क़ानून इस रिवायत में बयान किया गया है, वह ज़ाहिर में यही लगता है कि विवाहित मर्द चाहे विवाहित और से ज़िना करे या अविवाहित से दोनों स्थितियों में उसको रजम को सज़ा दी जाएगी। चौथी रिवायत इन सब से अलग है। उसमें कोड़ों और देसनिकाला की सज़ा के लिए अविवाहित से अविवाहित के ज़िना की शर्त भी बाक़ी नहीं रही। विवाहित अपराधियों के लिए भी उसमें केवल रजम की सज़ा बयान हुई है, लेकिन बूढ़ों का मामला और भी सख़्त हो गया है। उनकी जो सज़ा इसमें बयान हुई है, वह यह है कि उन्हें रजम करने से पहले सौ कोड़े भी मारे जाएंगे।

दूसरी बात जो इनमें से ख़ास कर मौता इमाम मालिक की रिवायत से सामने आती है, वह यह कि कुल कुरआन यही नहीं, जो अब हमारे पास मौजूद है, बल्कि उसमें से कुछ आयतें निकाल दी गयी हैं। यह बात ज़ाहिर है कि बहुत ही ख़तरनाक है और जिसने भी इसे गढ़ा है उसका मक़सद साफ़ यही मालूम होता है कि कुरआन को लोगों की नज़र में सन्दिग्ध ठहराया जाए और फ़ितना निकालने वालों के लए रास्ता निकाला जाए कि वो इस तरह की कुछ और आयतें गढ़ कर अपनी मान्यताएं भी अल्लाह की इस किताब में शामिल कर सकें। फिर वह जुमला जिसे इस रिवायत में कुरआन की आयत कहा गया है ज़बान व बयान (भाषा शैली) के लिहाज़ से इतना कमतर है कि कुरआन के मख़मल में टाट का पैवन्द मालूम होता है। कुरआन की अलौकिक भाषा के साथ इसका जोड़ मिलाना तो एक तरफ़, किसी सही आदमी के लिए इसे पैग़म्बर के बोल मानना भी मुमकिन नहीं है। फिर यह बात भी बहुत हास्यास्पद है कि आयत निकाल दी गयी और उसका हुक्म अभी बाक़ी है, जबकि कुरआन में वो आयतें भी मौजूद हैं जिनका हुक्म कुरआन की ही किसी दूसरी आयत से मंसूख़ (निरस्त) हो गया है। फिर यह सवाल भी इसके बारे में हर अक़ल वाले के ज़हन में पैदा होता है कि यह अगर कुरआन की एक आयत थी और निकाल दी गयी तो इससे यह बात साबित हो गयी कि उसका हुक्म भी ख़त्म हो गया, इससे अब रजम के समर्थन में तर्क आख़िर किस तरह किया जाएगा। उस्ताद इमाम अमीन अहसन इस्लाही ने इसके बारे में बिल्कुल सही लिखा है कि:

यह रिवायत बिल्कुल बेहूदा रिवायत है और सितम यह है कि इसको हज़रत उमर से जोड़ा गया है, हालांकि उनके मुबारक युग में अगर कोई यह रिवायत करने का साहस करता तो मुझे यक़ीन है कि वह उनके कोड़े से नहीं बच सकता। (तदब्बुर–ए–कुरआन 5/367)।

तीसरी बात इन रिवायतों से यह सामने आती है कि रजम जैसी कड़ी सज़ा का क़ानून बयान करने के लिए जो शैली अपनाई गयी है वह बहुत ही भ्रामक और अस्पष्ट है। उदाहरण के रूप में देखेः पहली रिवायत में विवाहिता से विवाहित और कुंवारी से कुंवारे के ज़िना की सज़ा बयान हुई है, लेकिन अगर कोई अविवाहित मर्द विवाहित औरत से और विवाहित मर्द कुंवारी औरत से दुष्कर्म करे तो उसकी सज़ा क्या होनी चाहिए। इसका इस रिवायत में कोई ज़िक्र नहीं है। इसकी शुरूआत जिस जुमले से हुई है उससे यह शक भी होता है कि इसमे सम्भवतः केवल ज़िना करने वाली औरतों के लिए सज़ा बयान हुई है। फिर *''अलबकर बिल बकर''* और *''अलसय्यिब बिलसय्यिब''* के जो शब्द इस रिवायत में आए हैं वह अरबी भाषा शैली के हिसाब से भी उस मतलब के लिए अटपटे हैं जो आम तौर से समझा जाता है। इसी तरह *''इहसान''* और *''मोहसन''* के शब्द जो विवाह और विवाहित के लिए दूसरी और तीसरी रिवायत में स्तेमाल हुए हैं, उनके बारे में अरबी भाषा से अवगत हर आदमी जानता है कि अरब डिक्शनरी में वो जिस तरह इस अर्थ के लिए बोले जाते हैं, उसी तरह गुलामी और गुलाम के मुक़ाबले में आज़ादी और आज़ाद और शील (इज़्ज़त) व सुशील (इज़्ज़तदार) के लिए भी आम तौर से स्तेमाल होते हैं। भाषाविदों ने साफ़ तौर से बयान किया है कि हज़रत मुहम्मद सल्ल. के पैग़म्बर बनने के बाद यह इस्लाम और मुसलमान के अर्थ में भी स्तेमाल हुए। अरबी भाषा में वो शब्द मौजूद हैं जो केवल शादी और शादीशुदा (विवाह और विवाहित) के लिए स्तेमाल होते हैं, लेकिन यह अजीब बात है कि एक ऐसा क़ानून बयान करने के लिए जिसके नतीजे में किसी इंसान को रजम जैसी कड़ी सज़ा दी जाएगी, कई अर्थों वाले ये शब्द बग़ैर किसी ख़ास वजह के स्तेमाल किए गए हैं। चुनांचि 'ज़िना बअद अलइहसान' (इहसान होने के बाद या बावजूद ज़िना) को अगर कोई आज़ाद हो जाने के बाद ज़िना के अर्थ में ले तो रिवायत के शब्दों में वह कौन सी चीज़ है जो यह अर्थ लेने में रूकावट बनेगी।

यह है उन रिवायतों की हक़ीक़त जिनसे कुरआन के हुक्म में बदलाव माना जाता है और ज़िना के विवाहित अपराधी के लिए रजम की सज़ा को शरीअत का क़ानून माना जाता है। इन रिवायतों के इस विरोधाभास और भ्रम को देखें और फ़ैसला करें कि किसी इंसान के लिए रजम की सज़ा तो बड़ी बात है, अगर किसी मच्छर को ज़िब्ह कर देने का क़ानून भी इस तरीक़े से बयान किया जाए तो कोई अक़ल रखने वाला क्या इसे क़ुबूल कर सकता है?

मुक़दमे

इन रिवायतों के अलावा इस सज़ा के सम्बंध में जो कुछ हदीस की किताबों में बयान हुआ है वह हक़ीक़त में ज़िना के विभिन्न मुक़दमों के बयान हैं जो इन मुक़दमों की कार्रवाई में शरीक रहे लोगों या देखने वालों की ज़बान से बयान हुए हैं और आधे अधूरे, विरोधाभासी बयान हैं। इन बयानों से उन सवालों का जवाब नहीं मिलता है जो इस सज़ा के सम्बंध में क़ानून व इंसाफ़ की दृष्टि से पैदा होते हैं। इन बयानों की एक संक्षिप्त समीक्षा हम यहां कर रहे हैं ताकि सही बात को समझने में कोई रुकावट न रहे।

इन मुक़दमों के अध्यन से सबसे पहली समस्या यह सामने आती है कि उनके अन्दर भी सज़ा के मामले में वही विवाद है जो हम ने उपर रिवायतों के संदर्भ में स्पष्ट किया है।

अतः देखें कि यहूदी और यहूदिया के रजम की जो घटना सुनन अबु दाऊद में अबु हुरैरा रज़ि. ने बयान की है उसमें 'इहसान' को अगर शादी ही के अर्थ में लिया जाए तो उबादा बिन सामित की रिवायत के हिसाब से सज़ा की वजह विवाहिता से विवाहित द्वारा ज़िना करना ठहरेगी, लेकिन मज़दूर के मुक़दमे में उसके पिता के द्वारा यह बताने के बावजूद कि उसका बेटा अविवाहित है, औरत को यही सज़ा दी गयीः

''अबु हुरैरा रज़ि. से रिवायत है कि उन्होंने फ़रमायाः एक यहूदी मर्द और औरत ने दुष्कर्म किया और वो दोनों मोहसन थे।'' (अबु दाउद रक़म 4451)

''(उसके पिता ने कहा) मेरा बेटा (जिसने ज़िना किया है) उस व्यक्ति की पत्नि के यहां मज़दूरी करता था और वह मोहसन नहीं था'' (फ़तहुल बारी, इब्ने हजर 12/140)।

इसी तरह यहूदी मर्द और यहूदी औरत को रजम से पहले सौ कोड़े भी नहीं मारे गए। यही मामला माइज़, ग़ामदिया और मज़दूर के मुक़दमे में हुआ[5], लेकिन हज़रत अली जैसे वरिष्ट सहाबी के बारे में इमाम अहमद बिन हंबल की रिवायत है कि उन्होंने अपने शासनकाल में शराहा नाम की एक औरत को रजम से पहले सौ कोड़े लगवाए और घोषणा की कि मैं ने इसे कुरआन के अनुसार कोड़े लगवाए और सुन्नत के अनुसार रजम किया हैः

''शअबी से रिवायत है कि अली रज़ि. ने शराहा नाम की औरत को जुमेरात के दिन कोड़े लगवाए और जुमा के दिन उसे रजम करा दिया और फ़रमायाः मैं ने उसे अल्लाह की किताब के मुताबिक़ कोड़े लगाए हैं और रसूल सल्ल. की सुन्नत के मुताबिक़ रजम करता हूं। (अहमद, रक़म 839)।

(5 इन मुक़दमों की रिवायत हदीस की लगभग सभी किताबों में नक़ल हुई है। उहादरण के लिए देखें बुख़ारी व मुस्लिम और अबु दाऊद, *किताबुल हुदूद*)।

ज़िना के अविवाहित अपराधियों के मामले में भी यही स्थिति सामने आती है। मज़दूर के मुक़दमे में बुख़ारी (रक़म 627) की रिवायत है कि उसे सौ कोड़े मारने के बाद एक साल के लिए देस निकाला भी दिया गया। मौता (रक़म 2573) की रिवायत के अनुसार हज़रत अबु बक्र रज़ि. ने भी एक व्यक्ति को यही सज़ा दी। तिरमिज़ी (रक़म 1438) ने हज़रत उमर के बारे में यही रिवायत किया है लेकिन अबुदाऊद में जाबिर बिन अब्दुल्लाह की वह रिवायत जिसमें एक व्यक्ति को सौ कोड़े लगवाने के बाद, जब यह मालूम हुआ कि यह 'मोहसन' है, रजम की सज़ा दी गयी, इसके विपरीत यह बताती है कि इस तरह के अपराधियों को केवल कोड़े मारने की सज़ा दी जाएगी। यही क़ानून अम्र बिन हमज़ा असलमी के उस मुक़दमे से भी स्पष्ट होता है जो *तबक़ात इब्ने सअद* में इस तरह बयान हुआ हैः

''जाबिर रज़ि. से रिवायत है कि एक व्यक्ति ने किसी औरत के साथ दुष्कर्म किया तो पैग़म्बर सल्ल. ने उसके बारे में सज़ा का आदेश दिया। फिर उसे कोड़े लगाए गए। फिर मालूम हुआ कि वह मोहसन है तो आदेश दिया गया और रजम कर दिया गया। (अबु दाऊद, रक़म 4438)।

अम्र बिन हमज़ा रसूल सल्ल. के साथ हुदैबिया मे मौजूद थे। वह मदीना आए। फिर पैग़म्बर सल्ल. से इजाज़त चाही कि अपने बादिया (गांव) लोट जाएं। पैग़म्बर सल्ल. ने इजाज़त देदी तो निकले, यहां तक कि

जब मदीना से मक्का की तरफ़ रास्ते के बीच एक जगह 'ज़ोआ' पहुंचे तो अरब की एक ख़ूबसूरत लौण्डी से मुलाक़ात हुई। शैतान ने उक्साया तो उससे ज़िना कर बैठे और उस समय वह मोहसन नहीं थे। फिर शर्मिन्दा हुए और पैग़म्बर सल्ल. पास आ कर आपको बताया। अतः आपने उन पर हद जारी कर दी (सज़ा देदी)। (अलतबक़ातुल कुबरा 3/225)

इन दोनों मुक़दमों में देख लीजिए, देश निकाला देने का कोई ज़िक्र नहीं है।

दूसरी समस्या इन मुक़दमों से यह सामने आती है कि अपराधी के विवाह के सम्बंध में पैग़म्बर सल्ल. की जांच इनमें भी सामान्यतः इसी शब्द 'इहसान' से बयान हुई है, जिसके बारे में हम इससे पहले स्पष्ट कर चुके हैं कि अरबी भाषा में यह केवल विवाह के लिए ही स्तेमाल नहीं होता। इसमें शक नहीं कि कुछ रिवायतों में इस मक़सद के लिए *'सय्यिब'*[9] शब्द भी स्तेमाल हुआ है, लेकिन यह बात चूंकि इस बात से ही साफ़ है कि इस घटना को बयान करते समय ''रिवायत बिल्लफ़्ज़'' (यथा शब्दों में बयान करना) का तरीक़ा नहीं अपनाया गया, इस वजह से अब यह जानने का कोई माध्यम हमारे पास नहीं है कि ख़ुद पैग़म्बर सल्ल. ने इस अवसर पर क्या शब्द बोले थे। इसलिए रजम के बारे में यह बात कि यह सज़ा केवल अपराधी के विवाहित होने की वजह से दी गयी, इस विषय की रिवायतों की तरह इन मुक़दमों से भी निश्चित रूप से साबित नहीं की जा सकती।

तीसरी समस्या यह सामने आती है कि विवाहित अपराधियों की सज़ा अगर सौ कोड़े और रजम या केवल रजम है और कुंवारे अपराधियों की सज़ा सौ कोड़े और देस–निकाला है तो कुरआन में केवल सौ कोड़ों की जो सज़ा बयान हुई है, वह फिर ज़िना के किन अपराधियों को दी जाएगी? इसके बाद तो कुरआन की इस आयत की उपयोगिता जिसमें यह सज़ा बयान हुई है अगर कुछ रह जाती है तो बस इतनी ही बची कि इसको पढ़ कर रजम की सज़ा पाने वालों को सवाब पहुंचाया जाए।

चौथी समस्या यह सामने आती है कि इनमें से पैग़म्बर सल्ल. के ज़माने के मुक़दमों के बारे में अब कोई व्यक्ति पूरे विश्वास के साथ यह दावा नहीं कर सकता कि यह सूरह 'नूर' में ज़िना की सज़ा का आदेश उतरने के बाद पैग़म्बर सल्ल. की अदालत में आए या इससे पहले आपके सामने आए। बुख़ारी और मुस्लिम दोनों की रिवायतों से मालूम होता है कि यह मुददा सल्फ़ (पहले के बुज़ुर्गों) में विवाद का विषय रह है। उन्होंने बयान किया कि शेबानी ने हज़रत अब्दुल्लाह बिन औफ़ा से पूछा कि रसूल सल्ल. ने रजम की सज़ा सूरह नूर उतरने से पहले दी या बाद में तो उन्होंने जवाब दिया मैं नहीं जानता[10]। कुछ लोग सूरह नूर के उतरने का ज़माना 'इफ़्क' (पैग़म्बर साहब की पत्नि आयशा रज़ि. के बारे में एक अफ़वाह फैलने की घटना) से निर्धारित करने की कोशिश करते हैं, लेकिन ख़ुद इफ़्क की घटना के बारे में भी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता कि यह कब हुई[11], और किस तरह हुई। फिर हदीस के इल्म की दृष्टि से आयतों के उतरने के ज़माने के संदर्भ में रिवायतों का जो हाल है वह भी जानने वालों की नज़र से छुपा हुआ नहीं है। इसके बाद, ज़ाहिर है कि कोई व्यक्ति अगर यह कहे कि ज़िना के अपराधियों को पैग़म्बर सल्ल. ने रजम की सज़ा इस अपराध के सम्बंध में कुरआन में कोई आदेश आने से पहले अहले किताब के क़ानून (तौरात) के अनुसार दी और फिर सूरह नूर ने उसे मंसूख़ कर दिया तो इसके जवाब में कोई ठोस बात नहीं कही जा सकती।

पांचवी समस्या यह सामने आती है कि ज़िना के अपराध में जिन अपराधियों को सज़ा दी गयी, उनकी परिस्थितियों और अपराध की स्वरूप के बारे में जो जानकारी इन मुक़दमों से मिलती है वह क़ानून की

दृष्टि से बहुत ही कमज़ोर और ऐसी हैं कि उनसे किसी निश्चित नतीजे पर पहुंचना अब किसी भी तरह मुमकिन नहीं है। फिर उनमें से कुछ मुक़दमों में फ़ैसला करने का जो तरीक़ा नक़ल हुआ है उसके बारे में कोई आदमी यह नहीं मान सकता कि उसको अल्लाह के पैग़म्बर से जोड़ना किसी भी तरह सही हो सकता है।

इसलिए देखें कि 'मौता इमाम मालिक' की रिवायत के अनुसार जिस औरत को हज़रत उमर फ़ारूक़ ने सीरिया की यात्रा के दौरान रजम की सज़ा दी, उसके बारे में कुछ पता नहीं चलता कि वह आदमी कौन था जिसने उसके साथ दुष्कर्म किया। यह घटना अचानक से हो गयी थी या पहले से कोई प्रेम प्रसंग चला आ रहा था जो एक दिन पति की जानकारी में आ गया। उसके पति ने जब उसे अपनी पत्नि के साथ आपत्ति जनक स्थिति में देखा तो पकड़ा क्यों नहीं? वह अगर निकल भागा था तो पति द्वारा पत्नि के साथ देखने और पत्नि द्वारा दुष्कर्म स्वीकार कर लिए जाने के बाद क़ानून ने उसका पीछा क्यों नहीं किया? इस्लाम का क़ानून क्या यह हो सकता है कि औरत के द्वारा अपराध स्वीकृति के बाद मर्द के बारे में कोई खोज ख़बर लगाने की या उससे पूछताछ की ज़रूरत न हो?

''अबु वाक़दि लैसी की रिवायत है कि उमर बिन ख़त्ताब रज़ि. शाम (सीरिया) में थे कि एक व्यक्ति उनके पास आया और बताया कि उसने एक आदमी को अपनी पत्नि के साथ आपत्ति जनक स्थिति में देखा है। हज़रत उमर ने अबु वाक़दि लैसी को उसकी पत्नि के पास तफ़्तीश के लिए भेजा वह पहुंचे तो उसके पास कुछ औरतें बैठी हुई थीं। उन्होंने उसे वह बात बताई जो उसके पति ने हज़रत उमर के सामने उसके बारे में कही थी और उसे बताया कि वह पति के आरोप में नहीं पकड़ी जाएगी और इसी तरह उसे समझाते रहे कि वह स्वीकार से पलट जाए, लेकिन उसने पलटने से इंकार किया और अपनी बात पर जमी रही। फिर हज़रत उमर ने हुक्म दिया और वह रजम कर दी गयी।'' (मौता 2567)

मौता की ही एक रिवायत में अबु बक्र सिद्दीक़ रज़ि. के बारे में बयान किया गया है कि उनके ज़माने में किसी व्यक्ति ने एक कुंवारी लड़की के साथ दुष्कर्म किया और उसे गर्भवती कर दिया। लोग उसे सिद्दीक़ रज़ि. के पास लाए तो उन्होंने उसे कोड़े लगाने और देश निकाला देने की सज़ा दी लेकिन लड़की के सम्बंध में किसी सज़ा का कोई ज़िक्र इस रिवायत में नहीं है। क्या इससे यह समझा जाए कि बलात्कार का मामला था जिसे लड़की ने अपने अपमान के डर से छुपाए रखा लेकिन जब गर्भवति होना सामने आ गया तो अपराधी को पकड़ा गया और उसे ज़िना के अपराध में सौ कोड़े मारने के बाद उसके चरित्रहीन होने की वजह से उसे देसनिकाल दिया गया? यह बात अगर नहीं थी तो फिर लड़की को सज़ा क्यों नहीं दी गयी और अगर दी गयी तो रिवायत में उसका ज़िक्र क्यों नहीं हुआ? वह अगर लौण्डी थी और उस पर हद जारी नहीं की जा सकती थी तो क्या 'तअज़ीर' (पैनह लॉ) के हिसाब से भी उसे कोई सज़ा देना मुमकिन नहीं था?

''अबु बक्र सिद्दीक़ रज़ि. के पास एक आदमी को लाया गया उसने एक कुंवारी लड़की के साथ दुष्कर्म किया था और उसे गर्भवती कर दिया था। उसने ज़िना करना स्वीकार किया और वह मोहसन न था। हज़रत अबु बक्र ने उसके बारे में सज़ा का आदेश दिया। फिर उसे फ़िदक की तरफ़ निकाल दिया गया।''(मौता 2573)

यही सवाल उस घटना के बारे में भी पैदा होते हैं जो अबु दाऊद में एक औरत के सम्बंध में बयान हुई है कि वह बच्चा उठाए अल्लाह के रसूल सल्ल. के पास पहुंची तो आपने उसके पास खड़े एक युवक के द्वारा

यह स्वीकार करने के बाद यह उसी के अपराध का नतीजा है, उसको रजम की सज़ा दी, लेकिन औरत से कुछ नहीं कहा।

''ख़ालिद बिन लजलाज से रिवायत है कि उसके पिता ने उसे बताया कि वह बाज़ार में बैठा काम कर रहा था कि एक औरत बच्चा उठाए गुज़री तो लोग भड़क कर उठे और उसके साथ चलने लगे और मैं भी उन्हीं में शामिल हो गया। पैग़म्बर सल्ल. के पास पहुंचा तो आप पूछ रहे थेः तुम्हारे साथ इस बच्चे का बाप कौन है, औरत ख़ामोश रही तो एक नौजवान ने जो उस बच्चे के पास खड़ा था कहा ऐ अल्लाह के रसूल सल्ल. मैं हूं उसका बाप, लेकिन पैग़म्बर सल्ल. ने फिर उसी औरत की तरफ़ देखा और पूछा तुम्हारे साथ इस बच्चे का बाप कौन है नौजवान ने फिर कहा मैं हू इस बच्चे का बाप ऐ अल्लाह के रसूल। इस पर रसूल सल्ल. ने उसके साथ खड़े हुए लोगों की तरफ़ देखा कि उसके बारे में पूछें तो उन्होंने कहाः हम तो अच्छा ही जानते हैं। रसूल सल्ल. ने पूछा तुम मोहसन हो, उसने कहा जी हां। चुनांचि आपने हुक्म दिया और उसे रजम कर दिया गया। (अबु दाउद 4435)

शराहा नाम की औरत के बारे में अहमद बिन हंबल की रिवायत हम इससे पहले नक़ल कर चुके हैं कि हज़रत अली ने उसे जुमेरात के दिन कोड़े लगवाए और जुमा के दिन रजम कर दिया[12]

(12. मुस्नद अमहद, रक़म 839)

हज़रत अली वह हस्ती हैं जिनके रात दिन पैग़म्बर सल्ल. के साथ मदीना में बीते। जिन्होंने तीन ख़लीफ़ाओं का ज़माना देखा। जिनके बारे में रिवायतों से पता चलता है कि रजम के कुछ मुक़दमों में उनसे मशौरा भी किया गया। उनके सम्बंध में यह रिवायत हमें बताती है कि वह रजम से पहले सौ कोड़े मारने के भी पक्षधर थे। उनके बारे में यह रिवायत अगर सही है कि तो पैग़म्बर सल्ल. के फ़ैसलों की रिवायतें कहां जाएंगी? और उनको अगर सही माना जाए तो फिर इस रिवायत के बारे में क्या कहा जाएगा? यह किस तरह मान लिया जाए कि हज़रत अली रजम जैसी सज़ा के बारे में पैग़म्बर सल्ल. के फ़ैसलों से अवगत नहीं थे। और अगर वह अवगत नहीं थे तो फिर बाद वालों की जानकारी का क्या भरोसा कि उसे इतने महत्वपूर्ण क़ानून का स्रोत मान लिया जाए?

इमाम मालिक की किताब मौता में है कि हज़रत उसमान के पास एक औरत लाई गयी जिसने विवाह के छः महीने बाद ही एक बच्चे को जन्म दिया था। हज़रत उसमान ने आदेश दिया कि इसे रजम कर दिया जाए। इस रिवायत को भी लोग विवाहित को रजम के सुबूत में रखते हैं, हालांकि बच्चा अगर वास्तव में दुष्कर्म से पैदा हुआ था तो यह बात खुद इस रिवायत से साबित हो गयी कि महिला ने यह अपराध विवाह से पहले किया था। फिर क्या इस रिवायत के आधार पर यह धारा भी क़ानून में जोड़ी जा सकती है कि ज़िना की आरोपी कुंवारी महिला अगर अपराध के बाद विवाह कर ले इस स्थिति में भी उसे रजम ही की सज़ा दी जाएगी?

उस्मान बिन अफ़्फ़ान रज़ि. के पास एक औरत को लाया गया जिसके यहां (विवाह के बाद) छटे महीने में बच्चा पैदा हुआ था तो उन्होंने आदेश दिया कि उसे रजम कर दिया जाए। (2570)

हदीस की मशहूर किताब सुनन अबु दाऊद में बक्र बिन लैस क़बीले के एक आदमी का मुक़दमा बयान हुआ है कि पैग़म्बर सल्ल. ने पहले उस पर ज़िना की हद जारी की (सज़ा का फैसला सुनाया), फिर औरत से पूछा तो उसने इंकार कर दिया। इस पर पैग़म्बर सल्ल. ने उस पर ''क़ज़्फ़'' (दुष्कर्म का बिला सुबूत

आरोप) के अपराध की सज़ा लागू की और कोड़े लगवाए। इसी तरह अबु दाऊद की रिवायत है कि एक व्यक्ति दुष्कर्म का दोषी बना और पैग़म्बर सल्ल. ने उसे केवल कोड़े लगाने की सज़ा दी। फिर पता चला कि वह विवाहित था तो आप ने उसे रजम करा दिया। यह दोनों रिवायतें वास्तव में पैग़म्बर सल्ल. की शान के ख़िलाफ़ हैं। पैग़म्बर सल्ल. से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि आपने अपराधी को कोड़े लगवाने के बाद औरत से पूछा होगा। अक़ल और इंसाफ़ का तक़ाज़ा तो यह था कि अगर औरत पर आरोप लगा था तो खुद आरोपी औरत से पूछे बग़ैर इस मुक़दमे का फ़ैसला न किया जाता। दूसरी रिवायत इससे भी ज़्यादा ग़ौर तलब है। पैग़म्बर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के बारे में कोई अक़ल वाला यह कैसे मान सकता है कि अगर सज़ा में फ़र्क़ का आधार वास्तव में विवाहित होना या न होना था तो आप ने इस बारे में जानकारी लिए बग़ैर दोषी को सौ कोड़े लगवा दिए। किसी व्यक्ति का विवाहित होना या न होना ऐसी कोई बात तो नहीं है जिसकी जानकारी जुटाने में दिक़्क़त हो। और कल्पना करें कि अगर पहले कोड़े मारने की सज़ा न दी गयी होती बल्कि रजम कर दिया गया होता और फिर पता चलता कि दोषी अविवाहित है तो इस सज़ा को कैसे लोटाया जाता?

रिवायतें ये हैः

''इब्ने अब्बास रज़ि. से रिवायत है कि बक्र बिन लैस क़बीले का एक आदमी पैग़म्बर सल्ल. के पास आया और उसने चार बार यह स्वीकार किया कि उसने एक औरत से दुष्कर्म किया है। वह कुंवारा था। अतः पैग़म्बर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने उसे सौ कोड़े लगवाए। फिर उससे उसे औरत के ख़िलाफ़ सुबूत चाहा तो उस औरत ने कहाः ऐ अल्लाह के रसूल, अल्लाह की क़सम इसने झूट बोला है, इस पर पैग़म्बर सल्ल. ने उसे ''क़ज़फ'' (झूटे या बिला सुबूत दुष्कर्म के आरोप) में अस्सी कोड़े लगवाए।'' (4467)

''जाबिर रज़ि. की रिवायत है कि एक आदमी ने किसी औरत से दुष्कर्म किया। उसके बारे में यह मालूम नहीं था कि वह मोहसन है या नहीं। इसलिए उसे कोड़े मारे गए। फिर पता चला कि वह मोहसन है तो उसे रजम कर दिया गया।''

यहूदी मर्द और यहूदी औरत के रजम का बयान जो बुख़ारी व मुस्लिम और हदीस की कुछ दूसरी किताबों में नक़ल हुआ है उसके बारे में यह आज तक तय नहीं हो सका कि पैग़म्बर सल्ल. ने उन्हें इस्लाम के क़ानून के तहत सज़ा दी थी या उनका अपना धार्मिक क़ानून उन पर लागू किया था। रिवायतों से ज़ाहिर में यह दूसरी बात ही सही लगती है लेकिन इसके बाद, ज़ाहिर है कि यह घटना इस अपराध की इस्लामी सज़ा का आधार नहीं बन सकती।

''पैग़म्बर सल्ल. ने फ़रमायाः मैं तौरात ही के अनुसार फ़ैसला करूंगा। अतः (उस यहूदी मर्द और यहूदी औरत के बारे में) आदेश दिया गया और दोनों को रजम कर दिया गया। (अबु दाउद 4450)

अल्लाह के रसूल सल्ल. ने फ़रमायाः ऐ अल्लाह मैं पहला व्यक्ति हूं जिसने आपके हुक्म को ज़िन्दा किया, जबकि ये उसे मुर्दा कर चुके थे।'' (अबु दाउद 4448)

ग़ामदिया नाम की औरत को रजम करने का बयान भी हदीस की कई किताबों में बयान हुआ है। यह औरत विवाहित थी या अविवाहित इसका कोई ज़िक्र रिवायतों में नही हुआ है। एक रिवायत में है कि उसे बच्चे के जन्म के तुरन्त बाद रजम कर दिया गया, और दूसरी रिवायत में इसके विपरीत साफ़ तौर से यह बताया

गया है कि उस पर सज़ा उस समय लागू की गयी जब दूध छुटाने के बाद उसका बच्चा खुद अपन हाथ से कुछ खाने के लायक़ हो गया था। इस अवधि में यह औरत कहां रही? एक रिवायत के अनुसार उसे एक अंसारी सहाबी (मदीना के निवासी) ने अपने पास रखा और दूसरी रिवायत के मुताबिक़ यह ज़िम्मेदारी उसके वली (संरक्षक) के उपर डाली गयी। यह कोई डेरे वाली थी जो पैग़म्बर सल्ल. से बैअत (आज्ञापालन की प्रतिज्ञा) में यह वायदा करने के बाद कि अब वह ज़िना जैसे कुकर्म के पास भी न फटकेगी, फिर इस कुकर्म में लिप्त हुई और गर्भ की वजह से स्वीकार करने पर मजबूर हुई या किसी सम्मानित परिवार की थी जो पति के होते हुए कहीं संयोग से दुष्कर्म कर बैठी? इस सवाल का जवाब रिवायत से नहीं मिलता। इस तरह यह बात भी साफ़ नहीं होती कि उसका पति (अगर कोई था) और उसके क़बीले के लोग इस परिवाद के दौरान कहां रहे? उसको दफ़न करते समय भी उसके परिजनों से कोई सामने नहीं आया। यह अगर कोई परिवार वाली औरत थी तो इस तरह की घटना पर जो बेचेनी स्वभाविक रूप से परिवार वालों में पैदा होना चाहिए, उसका कोई संकेत रिवायतों में क्यों नहीं मिलता?

रिवायतें यह है:

''उस औरत ने कहाः वह ज़िना से गर्भवती है। अल्लाह के रसूल ने पूछाः क्या तुम वास्तव में गर्भवती हो उसने कहा हां। इस पर आप ने फ़रमयाः इंतेज़ार करो ताकि जो कुछ तुम्हारे पेट में है वह बाहर आ जाए। रिवायत बयान करने वाले बयान करते हैं कि इसके बाद अंसार (मदीना के मूल निवासी मुसलमान) में से एक ने उसे अपने संरक्षण में ले लिया, यहां तक कि उसने बच्चा जना। फिर वह पैग़म्बर सल्ल. के पास आए और बताया कि ग़ामदिया ने बच्चा जन दिया है। आप ने फ़रमायाः हम अब भी उसे रजम न करेंगे कि उसके बच्चे को इसी तरह छोड़ दें और उसे कोई दूध पिलाने वाला भी न हो। अंसार में से एक आदमी ने यह बात सुनी तो उसने कहाः उसको दूध पिलवाने की ज़िम्मेदारी मैं लेता हूं अल्लाह के रसूल। रिवायत बयान करने वाले का बयान है कि इस पर आप ने उसे रजम कर दिया। मुस्लिम (4431)

''उस औरत ने कहाः ऐ अल्लाह के रसूल, आप मुझे क्यों लोटाते हैं? शायद उसी तरह जिस तरह आप ने माइज़ को लोटाया था। अल्लाह की क़सम मैं तो गर्भवती हूं। आपने फ़रमायाः तू नहीं टलती तो जा, उसकी पैदाइश तक इंतेज़ार कर। फिर जब पैदाइश हो गयी तो वह बच्चे को एक कपड़े में लपेट कर लाई और उसने कहाः यह है जिसे मैं ने जन्म दिया है। पैग़म्बर सल्ल. ने फ़रमाया जाओ इसे दूध पिलाओ, यहां तक कि तुम उसका दूध छुड़ा सको। फिर जब उसने दूध छुटा दिया तो वह बच्चे को लेकर इस तरह आई कि उसके हाथ में रोटी का टुकड़ा था और उसने कहाः ऐ अल्लाह के रसूल, यह मैं ने इसका दूध छुटा दिया और यह अब खाने लगा है। इस पर आप ने बच्चे को मुसमलानों में से एक आदमी के हवाले किया फिर हुक्म दिया कि इसके सीने तक गढढा खोदा जाए। फिर लोगों से कहा और उन्होंने उसे रजम कर दिया।'' (मुस्लिम 4432)

''इमरान बिन हिसीन की रिवायत है कि जहीना क़बीले की एक औरत पैग़म्बर सल्ल. के पास आई और वह ज़िना से गर्भवती थी। उसने पैग़म्बर सल्ल. से कहा कि ऐ अल्लाह के पैग़म्बर मैं हद (सज़ा) की पात्र हूं मुझे सज़ा दीजिए। इस पर पैग़म्बर सल्ल. ने उसके वली (संरक्षक) को बुलाया और उससे कहाः इसके साथ अच्छा बर्ताव करो और जब यह बच्चा जन ले तो इसे मेरे पास ले आओ। तो उसने यही किया। फिर पैग़म्बर सल्ल. ने हुक्म दिया तो उसके कपड़े उसके शरीर पर बांध दिए गए। फिर आदेश दिया तो वह रजम कर दी गयी। (मुस्लिम 4433)

मज़दूर का मुक़दमा भी हदीस की लगभग सभी किताबों में बयान हुआ है। बुख़ारी की रिवायत के मुताबिक़ यह जिस आदमी के यहां मज़दूरी पर काम करता था, उसकी पत्नि से दुष्कर्म का दोषी हुआ। उसके पिता ने उस व्यक्ति को सौ बकरियां और एक नौकर देकर राज़ी कर लिया। मगर आलिमों ने उसे बताया कि इस मामले में राज़ीनामा की गुंजाइश नहीं है। तो वह उस आदमी के साथ रसूल सल्ल. की सेवा में पहुंचा। रसूल सल्ल. ने फ़रमाया बकरियां और नौकर तुम्ही रखो, तुम्हारे बेटे के लिए सज़ा सौ कोड़े और एक साल का देस निकाला है और इस आदमी की पत्नि अगर स्वीकार करे तो उसे रजम किया जाएगाः

''उबैदुल्लाह ने मुझे बताया कि अबु हुरैरा और ज़ैद बिन ख़ालिद दोनों ने उनसे कहा कि हम पैग़म्बर सल्ल. के पास बैठे हुए थे कि एक व्यक्ति उठा और उसने कहाः मैं आपसे यह चाहता हूं कि आप हमारे बीच अल्लाह की किताब के अनुसार फ़ैसला कर दें। इस पर दूसरे पक्ष का आदमी खड़ा हुआ और वह उसके मुक़ाबले में कुछ समझदार लगता था। उसने कहा कि आप हमारे बीच अल्लाह की किताब के अनुसार ही फ़ैसला कीजिए और मुझे इजाज़त दीजिए मैं पूरा मुक़दमा आपके सामने बयान करूं। आप ने फ़रमायाः कहो, उसने बताया मेरा बेटा इस आदमी के यहां मज़दूर था। इसकी पत्नि से उसने ज़िना का गुनाह किया। मैं ने इसे सौ बकरियां और एक नौकर बदले में दिए। फिर मैं ने कुछ इल्म वालों से पूछा तो उन्होंने बताया कि मेरे बेटे के लिए सौ कोड़े और एक साल के लिए देस निकाला की सज़ा है और इसकी पत्नि को रजम किया जाएगा। इस पर पैग़म्बर सल्ल. ने फ़रमायाः मुझे क़सम है उस हस्ती की जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है, मैं तुम्हारे बीच अल्लाह की किताब के मुताबिक़ की फ़ैसला करूंगा, तो बकरियां और नौकर तुम्हें वापस। तुम्हारे बेटे के लिए सौ कोड़े और एक साल के लिए देसनिकाला, और अनीस तुम इसकी पत्नि के पास जाओ, वह अगर स्वीकार करे तो उसे रजम कर दो। (बुख़ारी 6828)

इस मुक़दमे का यह वर्णन मेरे नज़दीक बहुत भ्रामक है। वह कैसा ग़ैरतमंद अरब था जिसने अपनी पत्नि की गर्दन न मारी या उसे अलग नहीं किया, इसके बजाए एक नौकर और सौ बकरियां लेने पर राज़ी हो गया। क्या यह कोई शरीफ़ परिवार ता या उसकी रीति यह थी कि पहले किसी व्यक्ति को फांसा जाए और फिर इज़्ज़त की क़ीमत लेकर मामला निपटा दिया जाए? अपराध की बात किस तरह खुली? अपराधियों को पकड़ा गया या पत्नि ने खुद पति को बताया कि वह अपने मक़सद में कामयाब हो गयी है और अब वो लड़के के पिता से नौकर और बकरियों की मांग कर सकता है? लड़के की भूमिका क्या थी? मुक़दमे के बयान में साफ़ तरीक़े से यह बात सामने आती है कि दोनों पक्ष जब पैग़म्बर सल्ल. के पास आए तो विवाद सज़ा पर मतभेद का नहीं था बल्कि आपसी झगड़े जैसी स्थिति थी। यह झगड़ा क्यों हुआ? अनुमान से यह लगता है कि औरत का पति बकरियां और नौकर छोड़ने को तैयार नहीं था और लड़के के पिता की चाहत यह थी कि औरत को भी सज़ा मिले और उसके बेटे को उपयुक्त सज़ा मिले। इन सवालों का कोई स्पष्ट जवाब इस मुक़दमे के बयान में नहीं मिलता।

इस संदर्भ में महत्पूर्ण मुक़दमा माइज़ असलमी का है। यह एक अनाथ लड़का था जिसका पालनपोषण हज़ाल असलमी नाम के व्यक्ति के घर में हुआ[13]। एक दिन यह उनके पास आया और उन्हें बताया कि मैं महीरा नाम की एक औरत के पीछे पड़ा था, आज उससे अपनी इच्छा पूरी कर ली, लेकिन अब ग्लानि हो रही है कि मैं ने यह क्या हरकत कर डाली।[14] हज़ाल ने उसे सलाह दी कि तुम अल्लाह के रसूल सल्ल. के पास जाओ। इससे उनका मक़सद यह था कि इस गुनाह की सज़ा से बचने का कोई रास्ता शायद निकल आएगा।[15] तो यह आदमी पहले अबुबक्र सिद्दीक़ रज़ि. और उमर फ़ारूक़ रजि. के पास गया और दोनों की इस नसीहत के बावजूद कि अल्लाह से तौबा करो और जो परदा उसने तुम पर डाला है उसमें

छुपे रहो[16], यह सोच कर अल्लाह के रसूल सल्ल. के सामने हाज़िर हो गया कि आप उसे कोई हल्की सज़ा देकर छोड़ देंगे।

(13, अबु दाऊद रक़म 4420); (14 तबक़ात इब्ने सअद 3 228); (15 अबुदाऊद रक़म 4419); (16 मौता रक़म 2559);

जाबिर रज़ि. की रिवायत हैः

''हम ने उसे बाहर ला कर पत्थर मारना शुरू किए। पत्थर पड़े तो वह चीख़ाः लोगो मुझे अल्लाह के रसूल के पास वापस ले जाओ। मेरे क़बीले के लोगों ने मुझे मरवा दिया। उन्होंने मुझे धोखे में रखा। वह मुझे यह कहते रहे कि अल्लाह के रसूल मुझे क़त्ल नहीं कराएंगे।'' (अबु दाऊद, रक़म 4420)

कुछ रिवायतों से ज़ाहिर में यह लगता है कि रसूल सल्ल. को सबसे पहले उसी ने अपने गुनाह के बारे में बताया[17], लेकिन इब्ने अब्बास रज़ि. की एक रिवायत में साफ़ बयान हुआ है कि अल्लाह के रसूल सल्ल. उसके आने से पहले ही उसके अपराध से बा ख़बर हो चुके थे।

(17. उदाहरण के रूप में देखें बुख़ारीः रक़म 6814, मुस्लिमः रक़म 4428, अबुद दाऊदः रक़म 4419)

रिवायत यह हैः

''अल्लाह के रसूल सल्ल. ने माइज़ से पूछाः मुझे तुम्हारे बारे में जो कुछ पता चला है क्या वही सही है? उसने कहा आप को मेरे बारे में क्या पता चला है? आप ने फ़रमाया मुझे पता चला है कि तुमने फ़लां क़बीले की लडकी के साथ दुष्कर्म किया है। उसने कहा हां। इब्ने अब्बास कहते हैं उसके बाद उसने चार बार स्वीकार किया, तब उस पर सज़ा लागू करने का आदेश दिया गया। फिर उसे रजम कर दिया गया। (मुस्लिम, रक़म 4427)

उसके अपराध की पूरी स्थिति क्या थी? इस सम्बंध में कोई स्पष्ट बात हालांकि रिवायतों में बयान नहीं हुई है लेकिन इब्ने सअद की रिवायत के अनुसार जिस औरत से उसने दुष्कर्म किया, उसे चूंकि अल्लाह के रसूल सल्ल. ने बुलाया, मगर उसकी कोई पकड़ नहीं की, इस वजह से साफ़ यही मालूम होता है कि उसने ज़बरदस्ती बलात्कार किया थाः

''अल्लाह के रसूल सल्ल. ने उस औरत को बुलाया जिससे माइज़ ने ज़िना किया था, फिर उसे कहा चली जाओ और उससे कुछ नहीं पूछा।'' (अलतबक़ातुल कुबरा 3/229)

यह किस तरह का अपराधी था? इस सवाल का बिल्कुल स्पष्ट जवाब अल्लाह के रसूल के उस ख़ुत्बे (सम्बोधन) में मौजूद है जो आप ने उसे रजम कराने के बाद उसी दिन अस्र के समय दिया। इमाम मुस्लिम की रिवायत है कि आप ने फ़रमायाः

''क्या यही नहीं हुआ कि जब कभी हम अल्लाह के रास्ते में जिहाद के लिए निकले तो हमारे बाल बच्चों में से एक आदमी पीछे रह गया जो काम उत्तेजना से बकरे की तरह बिलबिलाता था। सुनो मेरे उपर लाज़िम है कि इस तरह का कोई अपराधी अगर मेरे पास लाया जाए तो मैं उसे कड़ी सज़ा दूं'' (रक़म 4428)।

कुछ लोग कहते हैं कि इस सम्बोधन में माइज़ का नाम कहां है कि इसे उसके संदर्भ में लिया जाए। लेकिन इस सम्बोधन को पढ़ने और यह जानने के बाद कि आपने माइज़ को रजम कराने के बाद उसी

दिन यह खुत्बा दिया था, हर आदमी अंदाज़ा कर सकता है कि यह कहना बिल्कुल बेमतलब है। अगर हमारे राष्ट्र अध्यक्ष सुबह को किसी पार्टी पर प्रतिबंध लगाएं और शाम को टीवी पर राष्ट्र को सम्बोधित करें कि यहां ऐसी पार्टी मौजूद थी जो इस देश को तोड़ने की योजना बनाती रही। अब हर व्यक्ति को जान लेना चाहिए कि इस तरह की कोई दूसरी पार्टी अगर बनी तो उसका वजूद भी इस देश में सहन नहीं किया जाएगा। इस भाषण को सुन्ने के बाद क्या कोई यह कह सकता है कि इस में उस पार्टी का नाम तो लिया नहीं गया कि इसे उससे सम्बंधित माना जाए जिस पर सुबह प्रतिबंध लगाया गया है।

इसी तरह कुछ लोग कहते हैं कि यह माइज़ वह व्यक्ति है जिसने अपने अपराध को खुद स्वीकारा था और उस पर पछतावा ज़ाहिर किया था।[18] अबु बक्र सिद्दीक़ और उमर फ़ारूक़ रज़ि. के पास यह हाज़िर हुआ तो उन्होंने उसे गुनाह छुपाने और अल्लाह से तौबा करने की सीख दी[19]। अल्लाह के रसूल सल्ल. ने भी उसके अपराध स्वीकारने को मान लेने के बजाए उसे बार बार लोटाया[20] और सज़ा का फ़ैसला करने से पहले इस तरह के सवाल किए क्या तुम जानते हो कि ज़िना क्या है? और तुम ने कहीं शराब तो नहीं पी? और उसकी क़ौम से पूछा कि यह दिमाग़ी रूप से विक्षिप्त तो नहीं है?[21] लोगों ने आप को बताया कि पत्थर पड़ने पर वह चीख़ रहा था कि लोगो! मुझे अल्लाह के रसूल के पास ले चलो, मेरे क़बीले वालों ने मुझे मरवा दिया, तो आपने फ़रमाया कि तुम ने उसे छोड़ क्यों नहीं दिया?[22] शायद वह तौबा करता और अल्लाह उसकी तौबा कुबूल कर लेते, और उसके संरक्षक से कहा तुमने अच्छा नहीं किया, बहतर यही था कि तुम उसके जुर्म पर परदा डाल देते[24]। लोगों ने जब यह कहा कि उसके दुर्भाग्य ने उसका पीछा नहीं छोड़ा यहां तक कि कुत्ते की तरह पत्थरों से मारा गया, तो रसूल सल्ल. ने उन्हें टोका[25]। उसके दफ़न के समय हालांकि आपने उसके जनाज़े की नमाज़ नहीं पढ़ी लेकिन दूसरे दिन यह नमाज़ पढ़ी और लोगों को उसके लिए दुआ की सीख दी[26], और उन्हें बताया कि उसने ऐसी तौबा की है कि अगर एक समुदाय में बांट दी जाए तो सबके लिए पर्याप्त हो[27] और खुशख़बरी सनाई कि अल्लाह ने उसको मआफ़ कर दिया और उसे जन्नत में दाख़िल कर दिया है[28]। ये लोग कहते हैं कि उसके बारे में यह सब बातें भी हदीस की किताबों में आई हैं इस वजह से यह किसी तरह नहीं माना जा सकता कि अल्लाह के रसूल की यह तक़रीर उसी के संदर्भ में है और उसने अगर बलात्कार का अपराध किया भी तो यही समझना चाहिए कि यह कोई भोला भाला व्यक्ति था जो भावनाओं में बह गया और यह हरकत कर बैठा।

(18 तबक़ात इब्ने सअद, 3/229); (19 मौता रक़म 2529); (20 मुस्लिम रक़म 4428); (21. बुख़ारी 5271; मुस्लिम 4420,4428,4431,4432; अबुदाउद 4421,4428); (22. अबुदाउद 4420); (23. अबुदाउद 4419; अलतबक़ातुल कुबरा, इब्ने सअद 3/229); (24. मौता 2560; अलतबक़ातुल कुबरा 3/229); (25. अबु दाउद 4428); (26. फ़तहुल बारी, इब्ने हजर 12/131; मुस्लिम 4431); (27. मुस्लिम 4431); (28. अबु दाउद 4428)

इसमें शक नहीं कि माइज़ के बारे में ये सारी बातें हदीस की किताबों में बयान हुई हैं लेकिन मेरे नज़दीक इनमें से एक भी ऐसी नहीं है कि उसके आधार पर उसके उस चरित्र को नकारा जा सके जिसका इशारा अल्लाह के रसूल सल्ल. के सम्बोधन में मौजूद है।

अपराध स्वीकारने और पछताने से यह बात ज़रूरी नहीं कि यह कोई नेक आदमी ही रहा होगा जिससे यह गुनाह उत्तेजना में हो गया। दुनिया में अपराधों का जो इतिहास अब तक लिखा गया है उससे बहुत से उदाहरण दिए जा सकते हैं बहुत चरित्रहीन गुण्डे जो किसी तरह पकड़ में नहीं आ सकते थे, अपराध करने के बाद किसी समय इस तरह क़ानून के सामने हाज़िर हुए कि उनकी ग्लानि और पछतावे पर लोगों के

दिल उनके लिए संवेदना और हमदर्दी से भर गए। अपराध की मनोवृत्ति का अध्ययन करने से पता चलता है कि उसके कई कारक और प्रेरक हो सकते हैः अपराधी इस आशंका से ग्रस्त हो जाता है कि अब यह अपराध छुपा नहीं रहेगा, इसलिए वह खुद आगे बढ़ कर इस विचार से खुद को क़ानून के हवाले करता है कि इस तरह शायद उसे सज़ा न दी जाए। अपराध इस तरह से होता है कि उसके खुल जाने को रोकना वास्तव में सम्भव नहीं होता। ऐसे में वह आगे बढ़ कर अपने आप को लोगों की प्रतिक्रिया से बचाने की कोशिश करता है। कामोत्तेजना के दबाव में बहुत दिनों तक औरतों का पीछा करने वाले जब पहली बार बलात्कार कर बैठते हैं तो कभी कभी इस गुनाह के बाद उत्तेजना कम पड़ जाने से उन्हें गुनाह को स्वीकार करने का मनोबल मिलता है। किसी असाधारण धार्मिक व्यक्ति के सम्पर्क में आ जाने से भी उसे यह प्रेरणा मिलती है। अपराध की स्थिति जैसे अपराधी के वहशीपन का शिकार होने वाली महिला या बच्चे की बेबसी भी यह नतीजा पैदा कर देती है। आत्म ग्लानि और अन्तरात्मा की आवाज़ से भी केवल भोले भाले अपराधी ही नहीं बल्कि बड़े बड़े बदमाश और बाहुबली बी कभी कभी किसी ख़ास स्थिति में ढीले पड़ जाते हैं और अपराध स्वीकारने के लिए बेचेन हो जाते हैं।

पैग़म्बर सल्ल. और आपके दो वरिष्ठ सहाबियों ने उसे अगर बार बार लोटाया और समझाया कि सज़ा पाने के बजाए उसे आत्मसुधार करना चाहिए और उसके संरक्षक से भी यह बात कही और आम लोगों को भी इसी की सीख दी तो उसकी चार्जशीट पर इससे क्या प्रभाव पड़ा? हर अच्छे समाज में बड़ों का यही रवैया होना चाहिए कि जब तक मामला मुक़दमे का रूप न ले तब तक हर ऐसे दोषी को इसी तरह नसीहत की जाए। क़ुरआन ने सूरह मायदा में जहां विद्रोह और उत्पात के अपराधियों के लिए भयंकर सज़ाएं बयान की हैं वहीं यह भी सीख दी है कि ये सज़ाएं उन लोगों पर लागू न की जाएं जो क़ानून की पकड़ में आने से पहले तौबा करके खुद को सुधार लें। इस तरह के अपराधियों के बारे में अगर बाद में यह मालूम हो कि वो पछतावे के साथ आत्मसुधार के इच्छुक हैं तो क़ुरआन की इन्ही आयतों के हिसाब से अदालत उन्हें कम दर्जे की सज़ा भी दे सकती है। अल्लाह के रसूल सल्ल. ने अगर यह फ़रमाया कि तुम ने उसे छोड़ क्यों न दिया तो ज़ाहिर है कि इसी लिए यह फ़रमाया। अगर अल्लाह चाहे तो तौबा और आत्म सुधार की इच्छा किसी बड़े से बड़े अपराधी में भी किसी समय पैदा हो सकती है और अल्लाह तआला उसकी तौबा क़ुबूल करके उसे जन्नत में दाख़िल कर सकते हैं। अल्लाह के रसूल अगर दुनिया में हों और उन्हें वह्यि के द्वारा यह बताया जाए कि अपराधी को अल्लाह ने मआफ़ कर दिया है और यह मालूम होने के बाद उसकी जनाज़े की नमाज़ रसूल पढ़ें और लोगों को भी उसके लिए दुआ की सीख दें तो इससे उस चरित्र का इंकार कैसे ज़रूरी हो जाएगा जो तौबा और सुधार से पहले उस अपराधी का रहा। यह तो नहीं कहा जा सकता कि किसी बदमाश को तौबा की सीख कभी नहीं मिलती और जो व्यक्ति तौबा कर ले उसके बारे में यह नहीं माना जा सकता कि वह कभी बुरा आदमी नहीं रहा।

इसी तरह यह बात तो सही है कि किसी अति बुरे आदमी का ज़िक्र भी उसके मर जाने के बाद कभी बुरे शब्दों में नहीं करना चाहिए और इसी आधार पर अल्लाह के रसूल सल्ल. ने उन लोगों को टोका जो माइज़ के बारे में कह रहे थे कि उसके दुर्भाग्य ने उसका पीछा न छोड़ा, यहां तक कि कुत्ते की तरह पत्थरों से मार दिया गया, लेकिन इसका अर्थ क्या यह है कि जिसके बारे में अनावश्यक रूप से ऐसी बातें कहने से रोका जाए वह निश्चित रूप से कोई सदाचारी और साफ़ चरित्र का आदमी ही होता है और क़ानून व पड़ताल के लिए भी उसके चरित्र की चर्चा नहीं की जा सकती।

रही यह बात कि अल्लाह के रसूल सल्ल. ने उससे इस तरह के सवाल किए कि क्या तुम जानते हो कि ज़िना क्या है? तो यह वो सवाल हैं जो अपराध स्वीकारने की स्थिति में हर अदालत को अपराधी से ज़रूर ही करना चाहिएं। इस स्थिति में चूंकि इस बात की सम्भावना रहती है कि बाद में कोई व्यक्ति अपराधी के किसी भ्रामक बयान के आधार पर अदालत के फ़ैसले पर आपत्ति जताए और मदीना के माहौल में जहां सुबह शाम इसी तरह के फ़ितनों के लिए मुनाफ़िक़ सक्रिय रहते थे, इस बात की आशंका चूंकि और भी अधिक थी इस वजह से आपने अपने सवालों के द्वारा मामले का कोई पहलू अस्पष्ट नहीं रहने दिया। इससे कोई व्यक्ति अगर यह साबित करने की कोशिश करता है कि वह बेचारा तो यह भी नहीं जानता था कि ज़िना क्या है तो उसके बारे में फिर क्या कहा जा सकता है।

इस जिरह से यह बात समझी जा सकती है कि इन सब बातों की हक़ीक़त क्या है? लेकिन इसके बावजूद अगर कोई इसी पर ज़ोर देता है कि इन रिवायतों से तो यही पता चलता है कि वह कोई सीधा सादा आदमी था जो बस यूं ही किसी औरत से दुष्कर्म कर बैठा तो उसे फिर मान लेना चाहिए कि इस स्थिति में इस मुक़दमे के संदर्भ में रसूल सल्ल. की तक़रीर और उन रिवायतों के बयान के बारे में ऐसे विवाद और विरोधाभास खड़े हो जाएंगे कि किसी के लिए भी यह मुमकिन नहीं होगा कि इस मुक़दमे के बारे में कोई बात निश्चित रूप से कह सके।

इनके अलावा दो और मुक़दमों का बयान भी हदीस की किताबों में नक़ल हुआ है। पहला मुक़दमा उस व्यक्ति का है जो नमाज़ के लिए जाती हुई एक औरत के बलात्कार का दोषी हुआ और पैग़म्बर सल्ल. ने उसे तुरन्त रजम करा दिया। दूसरा एक मशहूर सहाबी अम्र बिन हमज़ा असलमी का है जिन्होंने ज़िना का गुनाह किया और पैग़म्बर सल्ल. ने भी अपराध स्वीकारने के बाद उन्हें बस सौ कोड़े लगवाए और छोड़ दिया।

पहले मुक़दमे की रिवायत यह है कि

''अलक़मा बिन वाइल अपने पिता से रिवायत करते हैं कि पैग़म्बर सल्ल. के ज़माने में एक औरत नमाज़ के लिए घर से निकली तो तो रास्ते में एक व्यक्ति ने उसे देखा। फिर उसने उसे क़ाबू में कर लिया और उससे अपनी वासना पूरी की। इस पर वह चीख़ी चिल्लाई तो वह भाग खड़ा हुआ। उसी समय एक आदमी का गुज़र उस तरफ़ से हुआ तो उस औरत ने उसे बताया कि एक आदमी ने उसे इस तरह अपमानित किया है। यह बात हो ही रही थी कि मुहाजिरों (मक्का से आए हुए लोगों) की एक टोली भी उधर आ निकली। उसने उन्हें भी अपनी बिपता सुनाई तो वो दौड़े और उस आदमी को पकड़ लिया जिसके बारे में औरत का विचार था कि उसने उसके साथ ज़्यादती की है। वो उसे पकड़ कर उसके पास ले आए तो उसने कहा हां यह वही है। तो फिर वो उसे पैग़म्बर सल्ल. के पास ले आए। आपने उसके लिए सज़ा का आदेश दिया तो असिल अपराधी खड़ा हो गया और उसने कहा कि अल्लाह के रसूल यह मैं था जिसने उसके साथ ज़्यादती की है। इस पर आप ने औरत से कहा जाओ अल्लाह ने तुम्हें मआफ़ कर दिया और उस आदमी को जो शक में पकड़ा गय था अच्छी बात कह कर छोड़ दिया। फिर उस आदमी के बारे में जिसने औरत से दुष्कर्म किया था फ़रमाया इसे रजम कर दो।'' (अबु दाउद 4379)

दूसरे मुक़दमे की रिवायत यह हैः

''अम्र बिन हमज़ा रसूल सल्ल. के साथ हुदैबिया में मौजूद थे। वह मदीना आए फिर पैग़म्बर सल्ल. से अनुमति ली कि अपने गांव लोट जाएं। पैग़म्बर सल्ल. ने इजाज़त देदी तो निकले, यहां तक कि जब मदीना से मक्का की ओर आधे रस्ते मे एक जगह 'ज़ोआ' पहुंचे तो अरब की एक सुन्दर लौण्डी से मुलाक़ात हुई। शैतान ने उक्साया तो उससे ज़िना कर बैठे और उस समय वह मोहसन नहीं थे। फिर पछतावा हुआ और पैग़म्बर सल्ल. के पास आकर आप को बताया। तो आप ने उन पर हद जारी कर दी (सज़ा सुना दी)। (अलतबक़ातुल कुबरा, 3/225)

इनमें से पहले मुक़दमे में रजम की सज़ा अपराधी के विवाहित होने के आधार पर दी गयी या ज़बरदस्ती बलात्कार के कारण वह रजम की सज़ा का पात्र हुआ? इस सवाल का जवाब मुक़दमे की इस कार्रावाई से नहीं मिलता। दूसरा मुक़दमा इस लिहाज़ से बिल्कुल स्पष्ट है कि अपराधी एक मशहूर सहाबी हैं जो हुदैबिया के पास ली गयी प्रतिज्ञा में शामिल थे जो *''बैअत–ए–रिज़वान''* नाम से मशहूर है और पैग़म्बर सल्ल. ने उन्हें सज़ा भी वही दी जो ज़िना के अपराधियों के लिए क़ुरआन में बयान हुई है लेकिन इस मुक़दमे को अगर रिवायतों की रोशनी में देखा जाए तो फिर सवाल पैदा होता है कि सौ कोड़ों के साथ देस निकाला की जो सज़ा इन रिवायतों में बयान हुई है वह इन सहाबी के मामले में क्यों ख़त्म हो गयी? क्या यह समझा जाए कि केवल ज़िना के अपराध में सज़ा पाने वाले यही एक व्यक्ति थे जो पैग़म्बर सल्ल. के सामने आए, इनके अलावा जितने अपराधियों को सौ कोड़ों के साथ देस निकाला की सज़ा भी दी गयी वो केवल ज़िना के अपराधी नहीं थे, इसके साथ किसी दूसरे अपराध में भी लिप्त पाए गए थे जिसकी वजह से कोड़ों की सज़ा पाने के साथ साथ देश से भी निकाले गए?

रजम का स्रोत

ये हैं वो रिवायतें जिनके आधार पर फ़क़ीहों ने ज़िना के अपराधियों के लिए उनके केवल विवाहित होने के आधार पर रजम की सज़ा को शरीअत का नियम समझा है। इन सारी रिवायतों की हमने जो विवेचना की है उसकी रोशनी में पूरी निष्पक्षता के साथ इसकी समीक्षा कीजिए। इससे ज़्यादा से ज़्यादा कोई बात अगर मालूम होती है तो बस यह है कि पैग़म्बर सल्ल. और राशिद ख़लीफ़ाओं ने ज़िना के अपराधियों को रजम और देस–निकाला की सज़ा भी दी है। लेकिन किस तरह के अपराधियों के लिए यह सज़ा है और पैग़म्बर सल्ल. और आपके ख़लीफ़ाओं ने किस तरह के ज़िना अपराधियों को यह सज़ा दी? इस सवाल के जवाब में कोई निश्चित बात इन मुक़दमों के विवरण और इन रिवायतों के आधार पर नहीं कही जा सकती। इस सज़ा का स्रोत वास्तव में क्या है? यही वह सवाल है जिसे इमाम हमीदुद्दीन फ़राही ने अपने शोधपत्र *''अहकामुल उसूल बअहकामुर्रसूल''* में हल किया है। अपने उसूल (सिद्धांत) के अनुसार उन्होंने इन भ्रमपूर्ण और विरोधाभासी रिवायतों से क़ुरआन के निर्देश में कोई बदलाव करने के बजाए उन्हें इस किताब की रोशनी में समझने की कोशिश की है। उनके नज़दीक रजम और जिला–वतनी (देस निकाला) की इस सज़ा का स्रोत सूरह मायदा की निम्न आयत है जिसमें अल्लाह ने फ़रमाया है:

''वो लोग जो अल्लाह और अल्लाह के रसूल से लड़ते हैं और देश में उत्पात मचाने के लिए प्रयास करते रहते हैं, उनकी सज़ा बस यह है कि क़त्ल कर दिए जाएं या सूली पर चढ़ाए जाएं या उनके हाथ पांव अलग अलग तरफ़ से काट दिए जाएं या देस से निकाल दिए जाएं।'' (5:33)।

इमाम फ़राही के इस चिंतन के समर्थन में उस्ताद अमीन अहसन इस्लाही अपनी तफ़सीर *'तदब्बुर–ए–कुरआन'* में लिखते हैः

''अपराधी दो तरह के होते हैं, एक तो वो जिनसे चोरी या हत्या या ज़िना या दुष्कर्म के झूठे आरोप का अपराध हो जाता है लेकिन उनकी प्रकृति ऐसी नहीं होती कि वो समाज के लिए मुसीबत और घातक बन जाएं या सरकार के लिए क़ानून व्यवस्था की समस्या पैदा कर दें। दूसरे वो होते हैं जो व्यक्तिगत रूप से भी और जत्था बना कर भी समाज और सरकार के लिए मुसीबत और ख़तरा बन जाते हैं। पहली तरह के अपराधियों के लिए कुरआन में निर्धारित हुदूद और क़िसास (सज़ाओं) के निर्देश हैं जो इस्लामी शासन उन्ही शर्तों के साथ लागू करता है जो कुरआन व हदीस में बयान हुई हैं। दूसरी तरह के अपराधियों की रोकथाम के लिए निर्देश सूरह मायदा की 33–34 आयतों में दिए गए हैं'' (5/376)।

मायदा की इन आयतों के सन्दर्भ में उन्होंने लिखा हैः

''अल्लाह और अल्लाह के रसूल से लड़ने का मतलब यह है कि कोई व्यक्ति या वर्ग या समूह निर्भीक हो कर हक़ व अद्ल (सच्चाई और इंसाफ़) पर आधारित व्यवस्था को छिन्न भिन्न करने का दुस्साहस करे जो अल्लाह और रसूल ने स्थापित की है। इस तरह के प्रयास अगर बाहरी दुशमनों की तरफ़ से हों तो उसके मुक़ाबले के लिए जंग व जिहाद के निर्देश विस्तार से अलग बयान हुए हैं। यहां बाहरी दुशमनों के बजाए इस्लामी शासन के अन्दर उन आन्तरिक दुशमनों की रोकथाम के लिए 'तअज़ीर' के नियम दिए जा रहे हैं जो इस्लामी शासन के आधीन रहते हुए, चाहे वो मुसमलान हों या ग़ैर मुस्लिम, उसके क़ानून और व्यवस्था को चुनौती दें। क़ानून के उल्लंघन का एक रूप तो यह है कि कोई व्यक्ति या वर्ग क़ानून को अपने हाथ में लेने का प्रयास करे। उत्पात मचा कर शान्ति व्यवस्था को भंग करे। लोग उसके हाथों अपनी जान व माल व सम्मान के लिए हर समय ख़तरा महसूस करें। हत्या, डकेती, लूटमार, आगज़नी, अपहरण, बलात्कार, विघटनकारी और आतंकवादी गतिविधियां और इस तरह के गम्भीर अपराधों के चलते शासन के लिए क़ानून व्यवस्था का संकट पैदा हो जाए। ऐसी परिस्थितियों से निपटने के लिए हुदूद व तअज़ीर के आम क़ानूनों के बजाए इस्लामी शासन निम्नलिखित उपाय करने का पात्र है। (तदब्बुर–ए–कुरआन 2/505)।

इसके बाद उन्होंने रजम का स्रोत इन शब्दों में स्पष्ट किया हैः

''अंय्युक़त्तलू'' : क़त्ल कर दिए जाएं। यहां क़त्ल करने का शब्द अरबी व्याकरण के हिसाब से बहुत कठोर और अधिकतम का भाव देने वाले अर्थ में उपयोग हुआ है। इससे यह संकेत मिलता है कि उन अपराधियों को सबक़ सिखाने और अपराधिक प्रवृत्ति रखने वाले दूसरे लोगों को डरा देने वाले ढंग से क़त्ल किया जाए। अलबत्ता शरीअत में जिस चीज़ से मना किया गया है उसको नहीं अपनाया जाएगा जैसे आग में जलाना, या लाश के टुकड़े टुकड़े करना। इसके अलावा दूसरे तरीक़े जो गुण्डों और बदमाशों को सबक़ सिखाने, भयभीत करने और लोगों के अन्दर क़ानून व्यवस्था का सम्मान पैदा करने के लिए ज़रूरी समझे जाएं, शासन उन सब को अपना सकता है। 'रजम' अर्थात पत्थर मार मार कर हिलाक कर देना भी हमारे नज़दीक इस शब्द के अर्थों में शामिल है।'' (तदब्बुर–ए–कुरआन 2/505)।

इमाम हमीदुद्दीन फ़राही के इस निष्कर्ष का सार यह है कि ज़िना का अपराधी कुंवारा हो या विवाहित, उसकी असिल सज़ा तो सूरह नूर में कुरआन के साफ़ निर्देश के आधार पर सौ कोड़े लगाना ही है, लेकिन अपराधी अगर बलात्कार करे या दुष्कर्म को व्यवसाय बना ले या खुल्लम खुल्ला बदमाशी पर उतर आए या

अपनी वासना और और गुण्डागर्दी की वजह से आम लोगों के मान सम्मान के लिए ख़तरा बन जाए या मृत महिलाओं के शव क़बरों से निकाल कर कुकर्म करे या अपनी दौलत और शक्ति के नशे में ग़रीबों की बहु बेटियों को निर्वस्त्र करे या कम उम्र की लड़कियां भी उसके वहशीपन से सुरक्षित न हों तो मायदा की इस आयत के अनुरूप उसे रजम की सज़ा भी दी जा सकती है। इसी तरह अपराधी की परिस्थितियों और अपराध की प्रकृति के लिहाज़ से जो दूसरी सज़ाएं इस आयत में बयान हुई हैं, वो भी अगर अदालत उचित समझे तो इस तरह के अपराधियों को दे सकती है। उन्हीं सज़ाओं में से एक सज़ा निर्वासित करना (देस से निकालना) भी है। रसूल सल्ल. ने उन अपराधियों को जो केवल ज़िना के ही दोषी नहीं थे बल्कि इसके साथ अपनी बदमाशी के चलते *''फ़साद फ़िल अर्ज़''* (देश में उत्पात मचाने) के दोषी भी थे, ये दोनों सज़ाएं दी हैं। उनमें से वो दोषी जो अपनी परिस्थितियों और अपराध की प्रकृति के लिहाज़ से कम सज़ा के पात्र थे, उन्हें आपने ज़िना के अपराध में सूरह नूर की आयत के अन्तर्गत सौ कोड़े मारने के बाद समाज को उनके आतंक से बचाने के लिए उनकी बदमाशी की सज़ा में मायदा की इसी आयत के अन्तर्गत निर्वासित करने की सज़ा भी दी और उनमें से वो अपराधी जिन्हें कोई छूट देना सम्भव नहीं था इसी आयत के हुक्म *''अंय्यक़्त्तलू''* (क़त्ल कर दिए जाएं) के अन्तर्गत रजम कर दिए गए।

इमाम फ़राही का यह निष्कर्ष कुरआन की आयतों पर आधारित है और हदीस की रिवायतों में भी, जैसा कि हमारी विवेचना से स्पष्ट है, इसके सुबूत मौजूद हैं। इससे जो लोग असहमत हों उन्हें तर्क के आधार पर इसका रद करना चाहिए। यह वह चीज़ नहीं है जिसे भावनात्मक लेखों और निरर्थ फ़तवों के ज़रिए से रद किया जा सकता है।

3

ज़िना की सज़ा के बारे में जो दृष्टिकोण हमने उपर बयान किया है उससे यह सच्चाई बिल्कुल खुल कर सामने आ जाती है कि कुंवारे ज़िना अपराधियों की तरह विवाहित ज़िना अपराधियों की सज़ा भी कुरआन के हिसाब से कोड़े मारना ही है। कुरआन की यह मंशा सूरह नूर की आयत के अलावा उसकी दो और आयतों से भी स्पष्ट होती है। इनमें से एक सूरह नूर की आयत 18 और दूसरी सूरह निसा की आयत 25 है।

सूरह नूर की आयत में हैः

''और उस औरत से सज़ा इस तरह टलेगी कि वह चार बार अल्लाह की क़सम खा कर कहे कि यह व्यक्ति (जो आरोप लगा रहा है) झूटा है, और पांचवीं बार यह कहे कि उस पर (क़सम खाने वाली औरत पर) अल्लाह का ग़ज़ब टूटे अगर वह (व्यक्ति) सच्चा हो।'' 24: 8–9

ये आयतें उस विवाहित महिला के बारे में हैं जिस पर उसके पति ने ज़िना का लांछन लगाया हो। सज़ा के लिए इनमें *''अलअज़ाब''* का शब्द स्तेमाल हुआ है। इनसे उपर आयत में यही शब्द कोड़े मारने की उस सज़ा के लिए भी आया है जो ज़िना के अपराधियों के लिए इस सूरह के शुरू में बयान किया गया हैः

''ज़िना करने वाली औरत और ज़िना करने वाले मर्द, इनमें से हर एक को सौ कोड़े मारो और अल्लाह के दीन (क़ानून) को लागू करने में इनके साथ दया की भावना तुम्हें न पकड़े, अगर तुम वास्तव में अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखते हो और चाहिए कि उनकी सज़ा (अज़ाब) के समय मुसमलानों का एक वर्ग मौजूद हो।'' (24:2)

आयत 8 में ''अलअज़ाब'' का 'अलिफ़' 'लाम' (*अल*) ज़ाहिर है कि 'अहद' (किसी निश्चित बात) के लिए है और इसका 'मअहूद' (जिसके लिए वह निश्चित बात कही जाए) अरबी नियम के हिसाब से निश्चित रुप से वही सज़ा होगी जिसके लिए आयत 2 में *''अज़ाबहुमा''* (उन दोनों की सज़ा) का शब्द स्तेमाल हुआ है। अरबी का नियम है कि अगर '*अल* का कोई 'मअहूद' बातचीत या तहरीर में पीछे कहीं मौजूद हो तो उसी को आगे भी 'मअहूद' माना जाएगा यदि उसके विपरीत कोई बात कलाम में न पाई जाए। और संज्ञा की पुनरावृति संज्ञा से ही हो जैसे कि यहां अज़ाब शब्द की पुनरावृति हुई है, तो इन दोनों को एक ही अर्थ में लिया जाएगा अगर कोई ख़ास वजह न हो। लिहाज़ा यहां भी सूरह नूर की आयत 8 में अज़ाब का मतलब वही सज़ा है जो इसी सूरत की आयत 2 में अज़ाब के रुप में बयान की गयी है यानि विवाहित ज़िना अपराधियों की सज़ा भी सौ कोड़े।

अब सूरह निसा(4) की आयत 25 को देखें, अल्लाह ने फ़रमायाः

''और जो तुम में से इतनी क्षमता न रखता हो कि आज़ाद मोमिन औरतों से निकाह कर सके तो वह उन मोमिन लौण्डियों से निकाह कर ले जो तुम्हारे क़ब्ज़े में हों। अल्लाह तुम्हारे ईमान को जानते हैं। तुम सब एक दूसरे से ही हो, तो इन लौण्डियों से निकाह कर लो उनके मालिकों की इजाज़त से और रीति के अनुसार उनके महर दो, वो मोहसनात (चरित्रवान) हों, मुसाफ़िहात (वैश्यावृत्ति करने वाली) न हों, न चोरी छुपे दिल लगी करने वाली हों। फिर जब वह चरित्रवान रखी गयी हों और बाद में कुकर्म कर बैठें तो आज़ाद औरतों के लिए (कुकर्म की) जो सज़ा है उसकी आधी सज़ा उनके लिए है।''

इस आयत में साफ़ तौर से यह कहा गया है कि लौण्डियां अगर दुष्कर्म करेंगी तो उन्हें उस सज़ा की आधी सज़ा दी जाएगी जो आज़ाद औरतों के लिए रखी गयी है। आज़ाद औरतों के लिए इस आयत में *''अलमोहसनात''* का शब्द जिस तरह स्तेमाल हुआ है, उसमें यह बात किसी भी तरह मुमकिन नहीं है कि उसे अविवाहित औरतों के लिए ख़ास तौर से मान लिया जाए। और आधी का मतलब साफ़ है कि सौ कोड़े की सज़ा की आधी सज़ा। रजम की सज़ा का आधा या तिहाई तो किसी तरह हो नहीं सकता। अतः यह आयत भी इस मामले में बिल्कुल साफ़ है कि ज़िना की अपराधी औरत विवाहित हो या अविवाहित, उसके अपराध की अधिकतम सज़ा कुरआन के हिसाब से सौ कोड़े ही है।

कुरआन की इन दोनों आयतों में से सूरह नूर की आयत 8 के बारे में कोई दूसरा विचार अभी तक हमारे सामने नहीं आया है लेकिन सूरह निसा के संदर्भ में आम तौर से यह तीन तर्क दिए जाते हैः

एक यह कि *''मोहसनात''* का शब्द इस आयत के शुरू में चूंकि अविवाहित औरतों के सम्बंध में स्तेमाल हुआ है इसलिए *''निस्फ़ु मा अल अलमोहसनात मिन अलअज़ाब''* में भी इसे निश्चित रूप से इसी अर्थ में लिया जाएगा।

दूसरी यह कि *निस्फु मा अललमोहसनात* में ''अल–मोहसनात'' का अलिफ़ लाम (*अल*) एक निश्चित बात ('अहद') के लिए है और इसका 'मअहूद' (जिसके लिए वह निश्चित बात कही गयी है) 'अविवाहित आज़ाद औरतें' है जिन का ज़िक्र इस आयत के शुरु में हुआ है।

तीसरी यह कि लौण्डी जब निकाह से ही मोहसना होती है तो उसकी सज़ा भी अविवाहित आज़ाद औरत से आधी होना चाहिए जो पूरी मोहसना होती है। रहीं वो औरतें जो आज़ाद भी हैं और विवाहित भी हैं तो उन्हें चूंकि पहले आज़ादी और फिर विवाह के ज़रिए से दोहरा 'इहसान' प्राप्त होता है, इस वजह से 'मोहसना' लौण्डियों के मुक़ाबले में ''अलमोहसनात'' से वो यहां किसी तरह अभिप्राय नहीं हो सकतीं।

इन तर्कों की कमज़ोरी इतनी साफ़ है कि उनके रद में कुछ लिखने की ज़रूरत ही नहीं है लेकिन इनमें से पहली और आख़री दलील चूंकि मौलाना मौदूदी जैसे बड़े आलिम ने अपनी तफ़सीर *तफ़हीमुल कुरआन* में दी इस वजह से उनके रद में अपना दृष्टिकोण हम यहां बयान करते हैं।

पहला तर्क क लीजिए:

मोहसनात शब्द अरबी भाषा में आम तौर से तीन अर्थों में स्तेमाल होता है: एक विवाहित औरतें, दूसरे चरित्रवान औरतें और तीसरी आज़ाद औरतें।

पहले अर्थ की नज़ीर कुरआन और अरब शायरों के कलाम में मौजूद है। सूरह निसा (4) में शादी के लिए मना औरतों का ज़िक्र करते हुए अल्लाह ने फ़रमाया:

''और मोहसनात यानी वो औरतें भी तुम पर हराम हैं जो किसी के निकाह में हों, मगर यह कि वो तुम्हारी मिल्क यमीन (हाथ का माल, यानि बान्दी) बन जाएं (लड़ाई में क़ैद हो कर आएं और तुम्हारे संरक्षण में दी जाएं)'' 4:24

नाबक़ा ज़ीबानी का शेअर है:

''वो अलाफ़ी कजावों पर सवार जंग के मैदान में हैं और उनकी मोहसनात (पत्नियों) के तोहर उनकी रिफ़ाक़त से महरूम हैं''

दूसरा अर्थ भी कुरआन और अरबों के कलाम से साबित है। सूरह नूर में है:

''जो लोग मोहसनात (पाक दामन) भोली भाली, मोमिन औरतों पर लांछन लगाते हैं वो दुनिया और आख़िरत दोनों में लानत के पात्र हैं और उनके लिए बड़ा अज़ाब है।'' 24:23

शायर जरीर फ़र्ज़दक़ की निन्दा करते हुए कहता है:

''तुम गुनाहों की बैठकों में हर कुकर्मी औरत का पीछा करते हो। हक़ीक़त यह है कि तुम मोहसनात (पाक दामन) शरीफ़ औरतों के लायक़ ही नहीं हो।''

तीसरे अर्थ में भी यह शब्द कुरआन में आया है। सूरह निसा में है

''फिर अगर वह बेशर्मी का काम करें तो मोहसनात (आज़ाद औरतों) के लिए (बे शर्मी की) जो सज़ा है उसकी आधी सज़ा उन पर है। 4:25

इन सभी अर्थों में यह शब्द अरबी भाषा में स्तेमाल होता है, लेकिन अविवाहित आज़ाद औरतें इस शब्द का कोई अर्थ नही है कि जिनमें यह अगर किसी आयत के शुरू में स्तेमाल हुआ हो तो उसी परिप्रेक्ष्य में होने की दलील पर आयत के अन्त में भी इसको उसी अर्थ में लिया जाए। इसमें शक नहीं कि आयत के शुरू में यह शब्द अविवाहित औरतों के लिए ख़ास हो गया है, लेकिन यह केवल इसलिए हुआ है कि शब्द मोहसनात के साथ इस आयत में वहां क्रिया *''अंय्यनकिहा''* स्तेमाल हुई है और निकाह चूंकि अविवाहित औरत से ही होता है इसलिए वहां इसके अर्थ में यह विशेषता आ गयी है। लेकिन इससे यह ज़रूरी नहीं हो जाता कि आयत के आख़री हिस्से *''निस्फु मा....''* में भी यह विशेषता बनी रहे। भाषा शैलियों की बारीकी जानने वाला हर आदमी जानता है कि इस तरह के मौक़े पर स्तेमाल से जो विशेषता पैदा होती है, वह वहीं के लिए ही होती है। वहां से अलग होने के बाद, वह शब्द चाहे तुरन्त दूसरे ही जुमले में क्यों न स्तेमाल हो, वह अपने मूल और व्यापक अर्थ में ही लिया जाएगा अगर उसे विशेष अर्थ देने वाला कोई प्रतीक वहां न हो। हम उर्दू में कहते हैं:

''औरतों का यह हक़ है कि उनका निकाह उनकी रज़ामन्दी से किया जाए, और मर्दों की तरह औरतें भी यह हक़ रखती हैं कि उन्हें उनकी ज़रूरतों के अनुसार ऊंची से ऊंची शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराए जाएं।''

अब देखिए, पहले जुमले में औरतों शब्द चूंकि निकाह के संदर्भ में स्तेमाल हुआ है इसलिए वहां इसका मतलब अनिवार्य रूप से अविवाहित औरतें होगा, लेकिन बाद के जुमले में यह शब्द विवाहित और अविवाहित दोनों तरह की औरतें के लिए माना जाएगा। हो सकता है कि कोई यह कहे कि चूंकि पहले जुमले में यह शब्द अविवाहित स्त्रियों के लिए स्तेमाल हुआ है, इसलिए इसके तुरन्त बाद दूसरे जुमले में परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से इस शब्द को वहां भी अविवाहित औरतों के अर्थ में लिया जाएगा, लेकिन सच्ची बात यह है कि कोई भी भाषाविद इन जुमलों का यह अर्थ किसी तरह स्वीकार नहीं करेगा। वह तो निश्चित रूप से यही कहेगा कि किसी ख़ास मौक़े पर शब्द का विशेष अर्थ उस मौक़े के लिए ही ख़ास होता है। वह शब्द अगर उसके तुरन्त बाद वाले जुमले में स्तेमाल किया जाए तो वहां उसका विशेष अर्थ लेने के लिए कोई न कोई संकेत या प्रासंगिकता होना चाहिए, चूंकि ऐसा नहीं है इसलिए दूसरे जुमले में औरतों शब्द का अर्थ विवाहित और अविवाहित दोनों तरह की औरतों के लिए माना जाएगा। जैसे सूरह निसा में है:

''और तुम्हे आशंका हो कि तुम यतीमों के मामले में इंसाफ़ न कर सकोगं तो जो महिलाएं तुम्हारे लिए जायज़ हैं, उनमें से दो दो, तीन तीन, चार चार से निकाह कर लो, लेकिन अगर आशंका हो कि उनके साथ इंसाफ़ न कर सकोगे तो एक ही पर बस करो या कोई लौण्डी जो तुम्हारे हाथ में हो। यह तरीक़ा ज़्यादा क़रीब है कि तुम अन्याय से बचो और उन औरतों को महर दो, महर के रूप में।'' 4:3.4

यहां एक ही क्रम में दो जगह *''निसा''* (औरतों) का शब्द स्तेमाल हुआ है और देख लीजिए कि दोनों जगह यह यतीमों की माओं के लिए आया है, लेकिन विवाहित और अविवाहित होने के लिहाज़ से इसे एक अर्थ में नहीं लिया जा सकता। पहली आयत में यह चूंकि मोहसनात की तरह निकाह करने की क्रिया के ऑब्जेक्ट के रूप में आया है इस वजह से वहां अविवाहित महिलाओं के लिए ख़ास है और दूसरी आयत के शुरू में

इसका ज़िक्र चूंकि महर देने के निर्देश के साथ आया है इसलिए वहां इसे विवाहित महिलाओं के लिए ख़ास समझना ज़रूरी है।

इससे स्पष्ट होता है कि *''व मंल्लम यस्ततिअ....''* से *''निस्फ़ु मा अलल मोहसलनात* मे शब्द मोहसनात को ख़ास करना एक बेमतलब बात है जिसे अरबी भाषा और उसके व्याकरण की दृष्टि से स्वीकार करने की कोई गुंजाइश नहीं है।

अब दूसरा तर्क देखिएः

तारीफ़–ए–अहद (तयशुदा बात)का एक रुप यह होता है कि जिस शब्द पर अल आता है वह एक अनिश्चित संज्ञा के रुप में पहले से कलाम में मौजूद होता है जैसे मिस्बाहुन *अलमिस्बाहु फ़ी ज़ुजाजतिन, अलज़ुजाजतु कःअन्नहा कोवकबुन दुर्रियुन* [29] यानी अलमिस्बाहु पहले सामान्य रुप से स्तेमाल हुआ है, दूसरी बार जब ज़िक्र करने की ज़रुरत हुई तो अल लगाकर ख़ास कर दिया। यही मामला ज़ुजाजतुन के साथ हुआ।

अब ज़ाहिर है कि ''अलमोहसनात'' *अंय्यनकिहल मोहसनात* में भी अल के साथ स्तेमाल हुआ है और *निस्फ़ु मा अल अलमोनसनात* में भी, इसलिए यह रुप यहां लागू नहीं होगा।

इसका दूसरा रुप यह होता है कि जिस शब्द पर अल आता है उसका मतलब बोलने और सुन्ने वाले दोनों के ज़हन में पहले तय होता है, जैसे क़ुरआन में हैः

या अययुहा अल्लज़ीनः आमनू ला तरफ़उ असवातकुम फ़ोवक़ः सोवतिन अल–नबियि
ऐ ईमान वालो! तुम अपनी आवाज़ नबी की आवाज़ से उंची न करो अलहुजरात (49:2)

ईमान वालो तुम अपनी आवाज़ा अल–नबी (पैग़म्बर) की आवाज़ से ऊंची न करो। यहां अल–नबी का मतलब मुहम्मद सल्ल. हैं, और सम्बोधितों के लिए कलाम के वाचक का यह कहना ''मअहूद ज़हनी'' है यानी वह निश्चित बात जो कहने और सुन्ने वाले दोनों के ज़हन में निश्चि रूप से एक ही है।

अब देखिए *''निस्फ़ु मा अललमोहसनात...''* में ''अलमोहसनात'' का अल यह भी नहीं हो सकता, क्योंकि वाचक ने अगर अलमोहसनात से अभिप्राय कुंवारी मोहसनात ली हैं तो उसकी इस मंशा का अस्तित्व उसके मन या मस्तिष्क में ही है, उसे सम्बोधित का 'मअहूद ज़हनी' नही कहा जा सकता। अलिफ़–लाम के इस तरह के उपयोग के लिए यह ज़रूरी है कि जिस शब्द के साथ उसे जोड़ा जाए उसका अर्थ वाचक और स्रोता दोनों के ज़हन में मौजूद हो। ज़मख़शरी लिखते हैः

''लाम या तो तअरीफ़–ए–अहद के लिए होता है, जैसे उस व्यक्ति और उस दरहम के बारे में जिसका अभिप्राय तुम्हारे और तुम्हारे स्रोता के ज़हन में पहले निर्धारित होता है, तुम कहते होः *मा फ़अल अलरजुल* (उस आदमी ने नहीं किया), और *अनफ़क़तु अलदरहम* (मैं ने वह दरहम ख़र्च कर दिया)'' (अलमुफ़स्सल 326)।

इसमें शक नहीं कि 'तअरीफ़ अहद' के इस रूप का एक पहलू यह भी होता है कि वाचक स्रोता का ध्यान किए बग़ैर केवल अपने 'मअहूद ज़हनी' के लिहाज़ से किसी शब्द के साथ अल जोड़ता है, लेकिन अरबी

भाषा को जानने वाला हर व्यक्ति जानता है कि यह ऐसी जगहों पर होना सही है जब उस 'मअहूद ज़हनी' को बताना वाचक की मंशा ही न हो। जैसे लबीद बिन रबीआ की किताब में शब्द ''*अलहय्यि*''

''तेरे शौक़ की आग ज़अन अलहय्यि (क़बीले की हूदा नशीनों) ने भड़काई है, जब वह सफ़र का सामान बांध कर रवाना हुईं और अपने उन हूदों में सवार हो गयीं जिनकी लकड़ियां उनके बोझ से चरचराती हैं।''

या जैसे उमराउल क़ैस के शेअर में अलकसय्यिब

व यौमन अला ज़हरिल कसय्यिब तअज़रत

अलैय्या व आलस्त हलक़त लम तहिल्ल

और एक दिन रेत के टीले पर उसे राम करना मेरे लिए मुश्किल हो गया और उसने ऐसी क़सम खाली जिसमें किसी अपवाद की कोई गुंजाइश न थी।

इस शेअर में लबीद और उमराउलक़ैस ने ज़हन में पहले से मौजूद एक ख़ास क़बीले और ख़ास टीले का ज़िक्र करने के लिए शब्द हय्यि और शब्द कसय्यिब में '*अल*' जोड़ दिया है, लेकिन देख लीजिए, यहां हय्यि और कसय्यिब को चिन्हित करना दोनों का मक़सद नहीं है।

''*अल–मोहसनात*'' के 'अल' के बारे में हम यह बात भी नहीं कह सकते, क्योंकि यह बिल्कुल निश्चित है कि इस आयत मे इस शब्द के अर्थ का मतलब जताना वाचक की मंशा भी है और सुन्ने वाले की ज़रूरत भी। वह बताना चाहता है कि ज़िना के अपराध में लौण्डियों की सज़ा क्या है और सुनने वालों के लिए यह जानना ज़रूरी है कि 'मोहसनात' कौन हैं? उनकी सज़ा क्या है? और इस सज़ा की आधी सज़ा जो लौण्डियों को देना है वह क्या होगी?

'तअरीफ़–ए–अहद' के इन दो रूपों के अलावा कोई तीसरा रूप उस अर्थ को मानने के लिए जो यह लोग मानते और मनवाना चाहते हैं अरबी भाषा में अभी तक विक्सित नहीं हुआ है। इस वजह से उनका यह कहना कि 'अल–मोहसनात' में 'अलिफ़ लाम' यानी 'अल' तअरीफ़–ए–अहद के लिए है, बिल्कुल निराधार है।

यहां अगर कोई यह सवाल करे कि यह 'अल' किस रूप में यहां आया है तो हम कहेंगे कि यह ''जिन्सिया'' (किसी ख़ास प्रजाति को बताने) का वही रूप है जिसे इब्ने हश्शाम ने इन शब्दों में बयान किया हैः

''या फिर अलिफ़ लाम जिन्सिया तअरीफ़े माहियत के लिए आता है और उसकी पहचान यह है कि शब्द कुल हक़ीक़त के लिहाज़ से उसका उत्तराधिकारी हो सकता है रूपक के लिहाज़ से नहीं।'' (मुग़नी अललबीब 1/51)

इसके उदाहरण में उन्होंने कुरआन की यह आयत सामने रखी हैः

''*व जअलना मिन अलमाई कुल्लः शैइन हय्यि*'' (*और हमने हर ज़िन्दा चीज़ पानी से बनाई*) 21:30

रज़ी उस्तराबाज़ी अपनी मशहूर किताब ''*शरह काफ़िया*'' में इसको स्पष्ट करते हुए लिखते हैः

''और अलिफ़ लाम का दूसरा रूप 'माहिय्यति जिन्स' है। इसमें कमी या ज़्यादती पर शब्द के अर्थ को सुनिश्चत नहीं किया जा सकता। इसकी हैसियत एक तरह के बौद्धिक सम्भावना की होती है जैसा कि अल्लाह का फ़रमान हैः *''लइन अकलहु अलज़िअब''*। यहां ''अलज़िअब'' (भेड़िया) के 'अल' से अभिप्राय न किसी ख़ास भेड़िए का ज़िक्र करना है जो कहने और सुनने वालों के ज़हन में पहले से हो, न भेड़िया प्रजाति के सभी भेड़ियों से। .....

.....

अल (अलिफ़ लाम) के इस तरह के बहुत से उदाहरण अरबों के कलाम से सामने रखे जा सकते हैं। लेकिन हम यहां केवल उमराउल क़ैस का एक शेअर नक़ल करते हैं ताकि बात लम्बी न हो जाए।

मसह इज़ा मा अलसाबिहात अला अलवनी
असरन अलगुबार बिल कदीद अलमरकल

''और मैं उस घोड़े पर घूमने निकलता हूं जो लगातार चलता है, जब तेज़ रफ़्तार घोड़े कमज़ोरी के बावजूद धरती पर धूल उड़ाते हुए भागते हैं।''

इस शेअर में 'अलसाबिहात' 'अलवनी', 'अलगुबार' 'अलकदीद' इन सब का अल ''माहिय्यत जिन्स'' के लिए है।

गौर करें कि *''अंय्यनकिहल मोहसनात''* और *''निस्फ़ु मा अलल मोहसनात''* में शब्द मोहसनात का अलिफ़ लाम भी इसके अलावा कोई ओर नहीं हो सकता। हम पूरे यक़ीन से कहते हैं कि भाषा के नियमों में किसी दूसरी राय के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। चुनांचि *''निस्फ़ु मा अल अलमोहसनात''* में 'अलमोहसनात' के बारे में इन लोगों यह कहना कि इसमें अल तअरीफ़–ए–अहद के लिए है और इसका मअहूद अविवाहित आज़ाद औरतें हैं जिनका ज़िक्र इस आयत के शुरू में हुआ है, एक बे मतलब बात है।

इसके बाद अब तीसरा तर्क लीजिए

'मोहसनात' और उसके 'अल' पर आधारित जो तर्क इन लोगों ने दिए हैं उसके रद के बाद यह तर्क हालांकि अपने आप ख़त्म हो जाता है इसलिए जब यह बात साबित है कि अरबी नियम के हिसाब से आयत *''निस्फ़ु मा अल अलमोहसनात''* में 'अल–मोहसनात' का शब्द निश्चित रूप से विवाहित और अविवाहित दोनों तरह की आज़ाद औरतों के लिए है तो इसके मुक़ाबले में आधे, पूरे और दोगुने ''इहसान'' की यह बात कुरआन के साफ़ निर्देश के विपरीत होगी, लेकिन फिर भी थोड़ी देर के लिए इसे नज़र अंदाज़ करके इस तर्क को देखते हैं। इस तर्क का जो आधार बनाया गया है वह यह है कि *''फ़ इज़ा उहसिन्ना''* के शब्द इस आयत में *''जब वह निकाह में आ जाएं''* के अर्थ में स्तेमाल हुए हैं। इसके बाद यह जो फ़रमाया गया कि लौण्डी केवल निकाह से 'मोहसना' होती है, और निकाह से भी जो 'इहसान' उसे प्राप्त होता है वह चूंकि उस 'इहसान' की स्थिति से आधा है जो आज़ाद औरत को शादी के बग़ैर ही प्राप्त होता है, इसलिए विवाहित औरत का 'इहसान' निश्चित रूप से अविवाहित औरत के 'इहसान' से दो गुना होना चाहिए, यह सब इसी पर आधारित है।

लेकिन यह आधार क्या साबित भी है? हम पूरे विश्वास के साथ कहते हैं कि हरगिज़ नहीं, इसलिए कि अरबी नियम के हिसाब से *''फ़ इज़ा उहसिन्नः''* का वह मतलब जो लोगों ने समझा है, सूरह 'निसा' की

इस आयत में किसी तरह नहीं माना जा सकता। हमारे नज़दीक ये शब्द यहां *''जब वो निकाह के बंधन में आ जाएं''* के अर्थ में नहीं है, बल्कि *''जब वो पाक दामन रखी जाएं'* के अर्थ में स्तेमाल हुआ है, और अपना यह दृष्टिकोण हम तर्कों से साबित कर चुके हैं।

ये तर्क हम यहां देते हैः

इस आयत के जिस हिस्से में *''फ़ इज़ा उहसिन्नः''* के ये शब्द आए हैं वो यह हैः

''तो इन लौण्डियों से निकाह कर लो, उनके मालिकों की इजाज़त से और रीति के अनुसार उनके महर अदा करो, इस हाल में वह पाक दामन रखी गयी हों, न खुले रूप से दुष्कर्म करने वाली हो और न चोरी छुपे आशनाई करने वाली हों। फिर जब वो पाक दामन रखी जाएं और उसके बाद अगर दुष्कर्म कर बैठें तो आज़ाद औरतों की जो सज़ा है, उसकी आधी सज़ा उन पर है।'' (4:25)

इस आयत में *''फ़ इज़ा उहसिन्नः''* में *'इज़ा'* पर जो 'फ़' अक्षर लगाया गया है उसकी मंशा यह है कि *'उहसिन्नः'* से यहां वही अभिप्राय लिया जाए जो *''मोहसनातिन ग़र मुसाफ़िहातिन''* में 'मोहसनात' शब्द का है। अरबी में अगर कहें *''इज़हब इलैहि राकिबन फ़ इज़ा रकिबत''* ( )तो इस 'राकिबन' और 'रकिबत' को दो अलग अलग अर्थों में किसी तरह नहीं लिया जा सकता। इस जुमले में जो अर्थ 'राकिबन' से समझा जाएगा वही 'रकिबत' से भी समझा जाएगा। इसिलए *''फ़ इज़ा उहसिन्नः''* में 'उहसिन्नः' का अर्थ वास्तव में *''मोहसनातिन ग़ैरः मुसाफ़िहातिन''* में 'मोहसनात' शब्द के अर्थ पर निर्भर है।

अब 'मोहसनात' शब्द पर उसकी उपयोगिता और प्रासंगिकता के लिहाज़ से ग़ौर करें तो दो बातें साफ़ तौर से सामने आती हैं

एक यह कि फ़ अनकिहू हुन्नः आतू हुन्नः में सर्वनाम (Pronoun) से संज्ञा (Noun) की तरफ़ इशारा क्या गया है और इसका क्रिया कारक (subject of verb) जिस तरह *'उतू'* है उसी तरह *'फ़ अनकिहू'* भी है।

दूसरी बात यह कि यहां यह अकेले नहीं आया है बल्कि 'मुसाफ़िहातिन' की तुलना में आया है।

पहली बात यानि हाल और उसके आमिल (क्रिया और उसके कारक) पर ध्यान दें तो इसके बारे में हर इल्म रखने वाला जानता है कि क्रिया का कारक अगर ''फ़अल–ए–अम्र'' (आदेश) हो तो इस तरह के परिप्रेक्ष्य में यह शर्त के रुप में होता है। जैसे हम कहें कि *''अज़रिब्हु मशदूदन बिलशजरह'' (उसे मारो इस हाल में कि वह पेड़ से बंधा हुआ हो)* तो इसमें बंधा हुआ मारने के लए शर्त के रूप में है। अब देखिए, शर्त के बारे में यह बात मालूम है कि वह जिस फ़अल (क्रिया) से सम्बंधित होती है, उसके फ़ाइल या मफ़ऊल (Subject or Object) में उसका मौजूद होना पहले से मालूम होता है। जैसे ''मारो बंधा हुआ'' में मारो का निर्देश तभी पूरा होगा जब उक्त व्यक्ति को इस स्थिति में मारा जाए कि वह पहले से किसी पेड़ से बंधा हो या मारते समय उसे किसी पेड़ से बांधा जाए। इस तरह यह इसी सिद्धांत से है कि स्थिति इस तरह के जुमलों में कर्ता के अर्थ से अलग अर्थ में होती है।

अब इस सिद्धांत के सामने रख कर आयत पर ग़ौर कीजिए। इसमें 'मोहसनात' का आमिल फ़अल (कारक क्रिया) चूंक *''फ़नकिहू''* (*तो निकाह कर दो*) भी है इसलिए इसे अगर विवाहित औरतों के अर्थ में लिया जाएगा तो आयत का मतलब यह होगा कि उनसे विवाह कर दो, शर्त यह है कि वो विवाहित हों। ज़ाहिर है

कि यह बिल्कुल बे मतलब बात है। इस वजह से ज़रूरी है कि उसे यहां उसके आमिल फ़अल के अर्थ से अलग अर्थ यानी 'इस हाल में कि वो पाक दामन रखी गयी हों' के अर्थ में लिया जाएगा। अबु बक्र इब्नुल अरबी *अहकामुल कुर्आन* में लिखते हैः

''और एक वर्ग का मानना है कि यहां मोहसनात का मतलब है निकाह के माध्यम से, ना कि ज़िना के तरीक़े पर। हमारे नज़दीक यह मत बहुत कमज़ोर है। इसलिए कि इससे पहले अल्लाह न फ़रमाया हैः उनसे निकाह करो उनके मालिकों की इजाज़त से। इसके बाद ज़ाहिर है कि यह कहने का कोई मौक़ा नहीं है कि इस हाल में कि वो निकाह किए हुए हों। इससे तो जुमलों की संरचना में खुला बिगाड़ पैदा हो जाएगा और कलाम में केवल तकरार (पुनरावृत्ति) के अलावा कुछ बाक़ी न रहेगा।''

दूसरी बात, यानी तुलना का सिद्धांत सामने रखिए तो यह चूंकि ''*मुसाफ़िहातिन*'' के साथ बिल्कुल उसी तरह आया है जिस तरह हम बोलते हैः *हुवा आलिम, लैसः बिजाहिल* (वह आलिम है, जाहिल नहीं है), इसलिए भाषा के इस स्थायी नियम के हिसाब से समान अर्थों वाले शब्द जब अपने विलोम के साथ स्तेमाल हों तो उनका अर्थ उनके इस विलोम की वजह से निर्धारित या निश्चित हो जाता है, फिर वह समान्य नहीं रहते, 'मोहसनात' शब्द यहां ''इस हाल में कि वो पाक दामन रखी गयी हों'' ही के अर्थ में हो सकता है, इससे कोई दूसरा अर्थ नहीं लिया जा सकता। जैसे अरबी भाषा में '*जहल* एक ऐसा शब्द है जो न जानने के अर्थ में भी स्तेमाल होता है और जोश में आने, भावनाओं में बह जाने के अर्थ में भी स्तेमाल होता है। आम हालत में इसका अर्थ परिवेश या परिप्रेक्ष्य से निश्चित होता लेकिन हर आदमी मानेगा कि यह अगर अपने विलोम ''*हिल्म*'' (संयम) के साथ स्तेमाल हो तो यह ''न जानना'' के अर्थ में नहीं होगा। हमस के शायर अम्र बिन अहमर अलबाहुली का शेअर हैः

''और हमारे पास बहुत से बड़ी बड़ी देगें हैं जिन्हें लौण्डियां चूल्हों पर चढ़ाती उतारती हैं। जब उनके पेट जिहालत करते हैं तो संयमित नहीं होते (यानि जब उनमें जोश आता है तो जल्दी ठण्डी नहीं होतीं)।''

अब देखिए संयम की तुलना में स्तेमाल होने की वजह से यह बात निश्चित हो गयी कि जहल का अर्थ यहां जोश है, न जानना नहीं है। ग़ौर करें तो यही बात मोहसनात में है। मुसाफ़िहात की तुलना में आने की वजह से इसमें भी 'इस हाल में कि वह पाक दामन रखी गयी हों' के अलावा कोई और अर्थ नहीं निकल सकता।

मोहसनात शब्द के सम्बंध में इस स्पष्टीकरण के बाद बग़ैर किसी संकोच के बिना यह कहा जा सकता है कि उक्त आयत में ''*फ़ इज़ा उहसिन्नः*'' 'जब वह पाक दामन रखी जाएं' के अर्थ में आया है। हमने शुरू में बयान किया है कि जुमले की संरचना मोहसनातिन और उहसिन्नः के शब्द की समानता और उस पर फ़ अक्षर का स्तेमाल, इन सब से यह बात निश्चित होती है कि उहसिन्नः को यहां मोहसनात के अर्थ में लिया जाए। इस तरह मोहसनातिन का मतलब अगर 'इस हाल में कि पाक दामन रखी गयी हों' के सिवा कुछ और नहीं हो सकता तो अरबी नियम के हिसाब से ''*फ़ इज़ा उहसिन्नः*'' भी इसी अर्थ में होगा, इसे फिर निकाह के बंधन में ले आने के अर्थ में लेना किसी तरह मुमकिन नहीं है।

इस विवेचना के हिसाब से आयत की मंशा यह है कि परिवार की संरक्षा से महरूम होने और नैतिक प्रशिक्षण न होने की वजह से लौण्डियां ज़िना की उस सज़ा से अलग हैं जो सूरह नूर में इस अपराध के

लिए निर्धारित की गयी है लेकिन उनमें से जिन्हें पहले उनके मालिकों और उसके बाद उनके पतियों ने पाक दामन रखा है, वह अगर कुकर्म करें तो इस सज़ा की आधी सज़ा उन्हें भी दी जाएगी।

इससे साफ़ होता है कि सज़ा का आधार उनका विवाहित होना नहीं बल्कि उन्हें पाक दामन रखा जाना है, कि अगर वो पाक दामन रखी गयी हों तो यह सज़ा उन पर लागू होगी और नहीं रखा गया तो कुरआन के हिसाब से यह आधी सज़ा भी उन्हें नहीं दी जा सकती। इस स्थिति में कोई क़ानून बना कर (तअज़ीर अर्थात पैनल लॉ के अन्तर्गत) अदालत के द्वारा उन्हें सज़ा दी जा सकती है जो इस सज़ा से कम ही होगी।

इन तर्कों से यह हक़ीक़त खुल कर सामने आ जाती है कि जिस आधार पर यह मतलब लिया गया है वह आधार मौजूद ही नहीं है।

4

यहां उन ऐतिराज़ों (आपत्तियो)ं के जवाब दिए जा रहे हैं जो मौलाना अहमद सईद साहब काज़मी और मौलाना अबु शुऐब सफ़दर अली ने इस विवेचना में हमारे कुछ विचारों पर किए हैं। इस सिलसिले में मौलाना अबु शुऐब के लेख 'अलएअलाम' (4–8) में और मौलाना अहमद सईद काज़मी के लेख 'रिज़वान' (सितम्बर–अक्तूबर 1982) में छपे हैं।

मौलाना अहमद सईद काज़मी के ऐतिराज़

मौलाना की पहली टिप्पणि यह हैः

सूरह निसा की आयत ''*वमंल्लम यस्ततिअ मिनकुम ...*'' में 'अलमोहसनात' का 'अल' *माहियत जिन्स* के लिए नहीं है यानी किसी ख़ास लिंग या प्रजाति या प्रकार को बताने के लिए नहीं है। यह *अहद ज़हनी* का 'अल' है यानी किसी निश्चित बात को जताने के लिए जो कि कहने और सुन्ने वाले के ज़हन में है। यहां अगर 'अल' को जिन्स के लिए माना जाए तो 'मोहसनात' से वो सभी औरतें मुराद होंगी जो 'इहसान' का गुण रखती हैं। इस तरह मोमिन औरतें, आज़ाद औरतें, पाकदामन औरतें, निकाह की हुई औरतें सब इसके दायरे में आएंगी। ज़ाहिर है कि यह अर्थ ग़लत है। लिहाज़ा अलमोहसनात पर अलिफ़ लाम (अल) किसी भी तरह 'माहियत–ए–जिन्स' के लिए नहीं हो सकता। इसे हर हाल में 'अहद–ए–ज़हनी' का अल मान जाएगा।

यह ऐतिराज़ इस वजह से हुआ है कि मौलाना शायद अरबी ग्रामर के आलिमों के उन मतभेदों से वाक़िफ़ नहीं हैं जो 'माहियत ए जिन्स' और 'अहद ए ज़हनी' की शब्दावलियों के बारे में उनके बीच हुए हैं। इस विषय की मूल पुस्तकों का अध्ययन करने से मालूम होता है कि दुनिया के सभी विषयों की तरह इस विषय में भी कुछ अर्थ भावों के लिए एक से अधिक शब्दवालियां स्तेमाल होती हैं। फिर कुछ शब्दावलियों को विषय विशेषज्ञों का एक वर्ग एक अर्थ में लेता है और दूसरा वर्ग के यहां वह उसके विपरीत अर्थों में

स्तेमाल होती हैं। हर वह आदमी जिसने जीवन का कुछ हिस्सा इन किताबों के पढ़ने और उनकी परिचर्चाओं को समझने में लगाया है, इन मतभेदों की मिसालें आसानी से सामने रख सकता है।

अरबी भाषा के इस अलिफ़ लाम (अल) का मामला भी कुछ ऐसा ही है। पुराने लोग आम तौर से अपनी किताबों में इसके दो बड़े रूपों 'तअरीफ़–ए–अहद' और 'तअरीफ़–ए–जिन्स' का ज़िक्र करते हैं। अहद और जिन्स के कई रूपों का बयान आम तौर से उनके यहां नहीं मिलता। अरबी ग्रामर की मशहूर किताब '*अलमुफ़स्सिल*' ज़मख़शरी ने 514 हिजरी में पूरी की। वह इसमें लिखते हैः

जहां तक लाम तअरीफ़ का सम्बंध है तो यह वह साकिन लाम है जो इस्म नकरह पर दाख़िल होता है और उसे मअरफ़ा बना देता है यानी किसी आम चीज़, जगह या काम को विशेष बना देता है, जैसे *अहलक अलनास अलदीनार व अलदर्हम ;लोगों को दीनार व दरहम ने हिलाक कर दियाद्ध*, और ''*अलरजुल ख़ैर मिन अलमर्अत ;मर्द औरतों से बहतर हैंद्ध* इसमें यानी तमाम धातों में से सिर्फ़ दीनार और दरहम की बात हो रही है और सभी प्राणियों में से केवल इंसान का ज़िक्र है। यह तअरीफ़–ए–जिंस है। या जैसे तुम उस व्यक्ति और उस दर्हम के बारे में जिसका इशारा तुम्हारे और तुम्हारे स्रोता के ज़हन में पहले से तय होता है, कहते होः *मा अफ़ल अलरजुल* (*उस आदमी ने नहीं किया*); और *अनफ़कुत अलदरहम* (*मैं ने वह दर्हम ख़र्च कर दिया*)। '' (अलमुफ़स्सिल 326)

''मुग़नी अल्लबीब'' इस विषय पर इमाम इब्ने हश्शाम की किताब है जो उन्होंने इसके दो सदी बाद लिखी। इस किताब में भी लाम तअरीफ़ की चर्चा इसकी दो बड़ी सिन्फ़ों (प्रकारों) ही के ज़िक्र से हुई है, लेकिन इब्ने हश्शाम ने चूंकि अक्षरों की बहस बहुत विस्तार से की है इसलिए वह केवल इन सिन्फ़ों का ज़िक्र ही नहीं करते बल्कि इनके अलग अलग रूप भी उदाहरणों के साथ बताते हैं। उनके नज़दीक तअरीफ़ अहद का लाम निम्न तीन रूपों नें आता हैः

एक यह कि किसी इस्मे नकरह आम चीज़, काम या जगह को उसी तरह दोहराना मक़सद हो जैसे ''*कमा अरसलना इला फ़िरऔनः रसूला फ़असा फ़िरऔनुर रसूलः*'' (73:15–16) (जिस तरह फ़िरऔन की तरफ़ हमने रसूल भेजा तो फ़िरऔन ने रसूल की नाफ़रमानी की।

दूसरी यह कि उस शब्द को बोलने का मतलब बोलने वाले के सामने मौजूद हो, जैसे '*जाअनी हाज़ा अलरजुल* (मेरे पास यह आदमी आया)

तीसरी यह कि यह निहित मतलब या इशारा वाचक या वाचक व स्रोता दोनों का 'मअहूद ज़हनी' (ज़हन में तय) हो जैसे ''*इज़ हुमा फ़िल ग़ार...*'' *(जब वो दोनों ग़ार में थे)* (9:40)

अलिफ़ लाम के यही तीनों रूप हैं जिनके लिए कुछ दूसरे भाषाविदों के यहां 'अहद ख़ारजी' की शब्दावली स्तेमाल होती है। ''*काफ़िया*'' की शरह लिखने वाले जामी, सैयद शरीफ़ जिरजानी, इसाम इस्फ़राईनी, ये सब इन रूपों को अहद–ए–ख़ारजी में शुमार करते हैं। अलिफ़ लाम (अल) जिस शब्द पर आता है उसके अफ़राद वाचक के कलाम में उसके सामने या उसके ज़हन में अगर ख़ारिज में (बाहर) निश्चत हों तो उसे इन लोगों की शब्दावली में अहद ख़ारजी का अलिफ़ लाम कहा जाएगा। इसाम अस्फ़राईनी लिखते हैः

अलिफ़ लाम के ज़रिए से अगर शब्द के मतलब में उस रूप की तरफ़ इशारा किया जाए जो तुम्हारे और तुम्हारे सम्बोधित (स्रोता) के ज़हन में पहले से इस तरह निश्चित हो कि उसका ज़हन उसे सुनते ही उसके

मतलब की तरफ़ चला जाए तो अरबी ग्रामर के विशषज्ञों की शब्दावली में यह ''अहद ए ख़ारजी'' का अलिफ़ लाम (अल) है। (शरह जामी, हाशिया 35)

''मुग़नी अल्लबीब'' के लेखक ने तअरीफ़ अहद की तरह तअरीफ़ जिन्स के भी तीन ही रूप बयान किए हैं। पहले दो रूपों के लिए उन्होंने *लिसतग़राक़ि अलअफ़राद और लिसतग़राक़ ख़साइस अलअफ़राद* की तअबीर अपनाई है। तीसरे रूप के बारे में वह फ़रमाते हैः

या फिर 'अलिफ़ लाम जिन्सिया' 'तअरीफ़ माहियत' के लिए आता है और उसकी पहचान यह है कि 'कल' न तो हक़ीक़त में उसकी जगह ले सकता है न रूपक या इशारे में। कुरआन की आयत ''*व जअलना मिन अलमाइ कुल्लः शैईं हय्यि* में शब्द अलमाअ, और *वल्लाह ला अतुज़्विज अलनिसा* और *ला अलैस अलसियाब* के जुमलों में 'अलनिसा' और 'अलसियाब' इसी के उदाहरण हैं। (1/51)।

रज़ी इस्त्राबाज़ी लिखते हैः

और इसका दूसरा रूप माहियत–ए–जिन्स है। इसमें कमी व ज़्यादती पर शब्द को तर्क नहीं बनाया जा सकता। इसकी स्थिति एक तरह के अहतिमाल ए अक़ली यानी अक़ल से समझने वाली बात की होती है, जैसा कि अल्लाह तआला का इरशाद हैः ''*लइन अकलुह अलज़िअब*'' यहां 'अलज़िअब' (भेड़िया) के अलिफ़ लाम से न तो यह मंशा है कि किसी ख़ास भेड़िए का ज़िक्र करना है जो वाचक या स्रोता के ज़हन में पहले से हो न भेड़िया नस्ल के सभी सदस्यों की तरफ़ इशारा करना है। अदख़ल अलसोक़, अशतरः अल्लहम, और कुल्लुल ख़ुब्ज़ की तरह के जुमलों में अलसोक़, अललहम और अलख़ुब्ज़ इसी के उदाहरण हैं। (शरह अलरज़ी अली अलकाफ़िया1/14)

अब देखें, अलिफ़ लाम के यही रूप जिसके लिए इब्ने हश्शाम और रज़ी स्त्राबाज़ी ने 'माहियत–ए–जिंस' की शब्दावली अपनाई है, भाषाविदों के एक दूसरे वर्ग के यहां 'अहद–ए–ज़हनी' के नाम से पहचानी जाती है। इसाम अस्फ़राईनी ने लिखा हैः

लाम की दलील अगर किसी ख़ास जिंस के लिए हो लेकिन किसी ख़ास व्यक्ति के लिए न हो तो विषय विशेषज्ञों की शब्दावली में यह अहदे ज़हनी का अलिफ़ लाम है जैसे अदख़ल अलसौक़ मे अलसोक़ का 'अल'।

देखिए, अदख़ल अलसोक़ के उदाहरण में रज़ी स्त्राबाजी जिसे 'माहियते जिंस' का 'अलिफ़ लाम' कहते हैं अस्फ़राईनी ने उसी के लिए अहदे ज़हनी की शब्दावली स्तेमाल की है। चुनांच अव लितअरीफ़ अलमाहियह से अलैस अलसियाब तक इब्ने हश्शाम की तहरीर का जो हिस्सा हमने उपर नक़ल किया है उसके बाद उन्होंने इस दूसरी राय और दलील का ज़िक्र भी किया है। इन लिखते हैंः

अरबल ग्रामर के विशेषज्ञों में से कुछ लोग माहियते जिंस के इस अल के बारे में कहते हैं कि यह तअरीफ़ ए अहद के लिए है क्योंकि जिंस यानि प्रजाति असिल में उन चीज़ों में से है जो ज़हन में तय होती हैं और एक दूसरे से अलग होत हैं। इसलिए ये माहिरीन मअहूद को दो विभिन्न प्रकार का बताते हैंः एक मअहूद शख़सी और दूसरा मअहूद जिंसी यानी व्यक्तिगत रुप से निर्धारित और प्रजाति के रुप से पहचान वाला।

इस विवेचना से स्पष्ट है कि आयत ''*वमंल्लम यस्ततिअ मिनकुम ....''* में शब्द 'मोहसनात' के 'अल' के बारे में मौलाना का विचार हमारे विचार से अलग नहीं है। एक ही मतलब है जिसके लिए हमने इब्ने हश्शाम और रज़ी के तरीक़े पर माहियत जिंस की की ताबीर अपनाई है और मौलाना अस्फ़ाईनी वग़ैरह की पैरवी में अहद ज़हनी की शब्दावली स्तेमाल करते हैं। इस मामले में हमारा और मौलाना का मामला कुछ इस तरह का है कि हम जिस चीज़ का ज़िक्र आसमान के नाम से करते हैं, मौलाना का ज़ोर है कि वह असिल में फ़लक है। इस पर उनकी सेवा में हम यही निवेदन करेंगे कि वह कृपया डिक्शनरी देखें।

अब रही यह बात कि माहियत जिन्स का अलिफ़ लाम शब्द के सभी मतलबों यानी आज़ाद औरतों, पाकदामन औरतों, मोमिन औरतों और निकाह की हुई औरतों सब पर लागू होगा तो यह एक ग़लतफ़हमी है। इसमें शक नहीं कि 'अलमोहसनात' का शब्द अगर किसी जगह अकेला लिखा होगा तो उसकी माहियत निश्चित रूप से उसकी जिन्स के सभी रूपों को अपने अन्दर समेटेगी। इस स्थिति में बेशक उसके सभी मतलबों में से कोई एक मतलब भी उसके दायरे से बाहर नहीं रखा जाएगा लेकिन भाषा के निश्चित नियमों के अनुसार यह शब्द जब किसी कलाम का अंश बन कर आएगा और वहां उसकी उपयोगिता व प्रासंगिकता किसी एक अर्थ के साथ विशेष होगी तो उसके सभी अर्थ या सब में से कोई सा भी अर्थ नहीं लिए जाएगा बल्कि जुमलों की बनावट और विषय भूमिका के लिहाज़ से जो अर्थ वहां उचित होगा केवल उसी अर्थ को वहां निश्चित माना जाएगा और 'अल' उस जिन्स पर विषय विशेषज्ञों की भाषा में 'फ़र्द मा' के लिहाज़ से दलालत करेगा।

इब्ने हश्शाम और दूसरे उन जैसे आलिम चूंकि विषय की इन बारीकियों को समझते हैं इसलिए उन्होंने अलिफ़ लाम के इस रूप के लिए अहद ज़हनी के बजाए माहियत जिन्स की शब्दावली अपनाई है।

दूसरी आपत्ति यह है कि अलिफ़ लाम (अल) अहद ख़ारजी के लिए है और उसका मअहूद वही मोहसनात हैं जिनका ज़िक्र आयत के शुरू में *अंय्यनकिहल मोहसनात* में हुआ है। यहां यह बात स्पष्ट रहे कि अल से पहचाने जाने वालेअहद के मअहूद ख़ारजी को अगर उससे पहले लाम अहद के साथ ज़िक्र किया जाए तो यह जायज़ है। अल्लामा सैयद महमूद आलूसी बग़दादी ने ''*फ़इन्नः मअल उसरि युसरा''* में 'उसरि' का अर्थ दीनहीनता और अतिग़रीबी बताते हुए लिखा हैः ''कलाम का परिवेश इस बात में ज़ाहिर है कि अलउस्र में अलिफ़ लाम अहद के लिए है। इसके बाद इन्नः मअल उसरि युसरा के तहत लिखा है किः ऐसा लगता है कि यह जुमला पिछले जुमले के लिए ताकीद (ज़ोर देने) के मक़सद से स्तेमाल हुआ है और यह भी सम्भावना है कि ताकीद के बजाए अलग बयान हो और पहले की तरह 'अलउस्र' का 'अल' अहद के लिए और 'युसरन' की तनवीन (न की ध्वनि पर जुमले का विराम) तफ़ख़ीम (मोटा करके पढ़ने) के लिए हो। इसके बाद लिखा है कि स्तीनाफ़ (ठहर कर पढ़ने) की सम्भावना ही ज़्यादा है क्योंकि ताकीद पर तासीस की फ़ज़ीलत मालूम हो चुकी है।'' (रुहुलमआनी, आलूसी 30/170)

लिहाज़ा मौलाना के इस ऐतिराज़ के लिए भी बुनियाद मौजूद नहीं है। 'अलमोहसनात' का अलिफ़ लाम ''*निस्फ़ु मा अल अलमोहसनात ...''* में किसी तरह अहद ख़ारजी के लिए नहीं हो सकता। अरबी भाषा मे यह एक तय सिद्धांत है कि मुअर्रफ़ बिल्लाम (अल के साथ जुड़े शब्द) को दोहराना अगर मुअर्रफ़ बिल्लाम के रूप में ही किया जाए तो पहले और दूसरे में बग़ैर किसी उपयुक्त तर्क के अलिफ़ लाम को अलग अलग अर्थों में नहीं लिया जा सकता। पहले मैं अगर उसे अहद–ए–ख़ारजी के लिए माना जाएगा तो दूसरे में भी वह निश्चित रूप से अहदे ख़ारजी के लिए ही होगा और पहले में अगर उसे अहद ज़हनी का अल कहा जाएगा तो दूसरे में भी उसे अहद ज़हनी ही के लिए मानना लाज़िम होगा, या यह कि कोई उचित आधार

हो इस बात का उसे नहीं माना जाए। अगर कोई उचित आधार होगा तो दोनों में भेद पैदा हो जाएगा। इस स्थिति में ज़ाहिर है कि अहद और मअहूद के बीच कोई सम्बंध होने की सम्भावना न होगी। चुनांचि इस आयत में 'अलमोहसनात' का अलिफ़ लाम जैसा कि हम ने इस विवेचना में इससे पहले तर्कों के साथ स्पष्ट किया है, ''अंय्यनकिहल मोहसनात'' में भी और ''निस्फ़ु मा अल अलमोहसनात'' में भी दोनों जगह 'माहियत ए जिन्स' या अस्फ़राईनी वग़ैरह की शब्दावली में 'अहद ए ज़हनी' के लिए है।

आलूसी की जो तहरीर मौलाना ने नक़ल की है उसमें वह भी यह बात कहते हैं। सुरह अलम नशरह में 'अलउस्र' शब्द आयत ''*फ़इन्ना मअल उस्रि युसरन*'' (94:5) और इसके बाद की आयत ''*इन्नः मअल उस्रि युसरा*'' (94:6) में मुअर्रफ़ बिल्लाम और शब्द युस्र दोनों जगह नकरह (अनिश्चित या आम अर्थ मे) स्तेमाल हुआ है। अरबी भाषा के नियम के हिसाब से पहली आयत *फ़इन्नः मअल उसरि युसरन* में 'उस्र' का 'अल' तीन अर्थों में हो सकता हैः

एक अहद ख़ारजी, इस स्थिति में उसका मअहूद वो हालात होंगे जिनसे मुसलमान उस समय दोचार थे।

दूसरी माहियत जिन्स या अहद ज़हनी यानी किसी ख़ास हालत को सुनिश्चित किए बग़ैर उस्र, और तीसरे हर तरह की तंगी और दिक़्क़त

पहली स्थिति में आयत का मतलब यह होगाः बेशक वह तंगी जिसमें तुम हो, उसके साथ आसानी है।

दूसरी स्थिति में आयत का अनुवाद इस तरह करेंगेः बेशक तंगी के साथ आसानी है।

तीसरी सूरत में आयत का मतलब यह होगाः बेशक हर तंगी के साथ एक आसानी है।

इन तीनों स्थितियों में से जो स्थिति भी पहली आयत *फ़इन्न मअल उसरि* में अपनाई जाएगी वही स्थिति निश्चित रूप से दूसरी आयत भी मानी जाएगी। यानी पहली आयत में अगर 'अलउस्र' का 'अल' अहद ख़ारजी के लिए माना जाएगा तो दूसरी आयत में भी उसे निश्चित रूप से इसी अर्थ में लिया जाएगा। पहली आयत में इसे अगर आप हर तरह की तंगी के लिए मानेंगे तो दूसरी आयत में भी उसे किसी दूसरे अर्थ में लेना मुमकिन न होगा। इआदा मुअर्रफ़ बिल्लाम की स्थिति में भाषा का यही नियम है जो हमने उपर बयान किया है। इस तरह आलूसी के बारे में इस स्पष्टीकरण के बाद कि इसमें अलउस्र का अल अहद ख़ारजी और युस्र की तनवीन (न की ध्वनि पर जुमले की समाप्ति) तफ़ख़ीम के लिए है, दूसरी आयत में इसी नियम के अनुसार वह लिखते हैः

''यह दूसरी आयत तकरार यानी पुनरावृत्ति भी हो सकती है ताकि मतलब को दिलों में जमाने का ज़रिया बने, जैसा कि किसी बात को दोहराने से होता है। और यह भी मुमकिन है कि इसे एक नया वायदा माना जाए और अलउस्र का अल पहले की तरह अहद ख़ारजी और तनवी नतफ़ख़ीम के लिए हो।''

अरबी भाषा को जानने वाला हर आदमी जानता है कि आलूसी की तहरीर में 'अल वत्तनवीन अला मा सबक़' का मतलब इसके अलावा कोई और नहीं हो सकता। यह बिल्कुल वही बात है जो हम ने उपर बयान की है। अलउस्र का अल पहली आयत में अगर अहद ख़ारजी के लिए है तो दूसरी आयत में भी उसे अहद ख़ारजी के लिए माना जाएगा और उसका मअहूद पहली आयत में शब्द अलउस्र नहीं बल्कि वह चीज़ होगी जो वहां अलउस्र के अल का मअहूद है। यानी आलूसी के अनुसार आयत का मतलब यह होगाः

बेशक वह तंगी जिसमें तुम हो, उसके साथ एक बड़ी आसानी है। बेशक वह तंगी जिसमें तुम हो उसके साथ एक बड़ी आसानी है। यही बात ज़मख़शरी ने इस तरह बयान की है''

''और उस्र एक ही होगा, इसलिए कि उसकी परिभाषा या तो दोनों जगह अहद के लिए होगी, यानि वह उस जिसमें वह उस समय थे तो दूसरा उसी तरह पहला होगा, जैसे तुम कहते हो बेशक ज़ैद के साथ माल है, बेशक ज़ैद के साथ माल है), और या फिर दोनों जगह जिन्स के लिए होगी, यानि वह उस्र जिसे हर आदमी जानता है, तो इस स्थिति में भी दूसरा उसी तरह पहला माना जाएगा।''

अबुलबक़ा अकबरी इमला मा मिन ब अलरहमान में लिखते हैः

''उस्र दोनों आयतों फ़इन्न मअल उसरि युसरन और इन्न मअल उसरि युसरा में एक ही है, क्योंकि अलिफ़ लाम पहले की पुरनरावृत्ति को लाज़िम करता है।''

मौलाना देख सकते हैं कि आलूसी की जो रिवायत उन्होंने अपनी बात के समर्थन में नक़ल की थी, वह उनके दृष्टिकोण को रद करती और हमारे दृष्टिकोण का समर्थन करती है। अरबी भाषा में यह नियम निश्चित है कि मुअर्रफ़ बिल्लाम का दोहराना (पुनरावृत्ति) अगर मुअर्रफ़ बिल्लाम के रूप में ही की जाए तो पहला उसी तरह दोहराया जाएगा। इसलिए मौलाना अगर *''अंय्यनकिहल मोहसनात''* में 'अलमोहसनात' का अलिफ़ लाम अहद ज़हनी के लिए मानेंगे तो *''निस्फ़ु मा अल अलमोहसनात''* में भी उन्हें इसे अहद ज़हनी के लिए ही माना पड़ेगा। अरबी भाषा में इसके अलावा किसी तरीक़े के लिए कोई गुंजाइश नहीं है।

तीसरी आपत्ति यह है कि

''शब्द मोहसनात को संयुक्त या सामान्य बताना ग़लत है। मालूम है कि सामान्य शब्द अलग अलग पोज़ीशन में अलग अलग अर्थ देते हैं जैसे ऐन शब्द का अर्थ आंख भी है और बहता झरना भी। इसके विपरीत शब्द मोहसनात का मूल अलइहसान केवल मना अर्थ के लिए है लेकिन इस अर्थ के रुप चार हैं।''

शब्द मुशतरक (समान) एक शब्दावली भी है और अरबी व उर्दू में केवल *'अल्लज़ी तशतरक फ़ीहि मआनिन कसीरह'* के अर्थों में स्तेमाल होने वाली एक संज्ञा (स्मि) भी है। मौलाना ने इसकी जो परिभाषा नक़ल की है, उसूल की किताबों में बेशक, इसका स्तेमाल इस परिभाषा के दायरे में ही होता है, लेकिन हमारा लेख चूंकि भाषा की विवेचना से सम्बंधित था, इस वजह से उसमें यह शब्द अपने व्यापक अर्थों में स्तेमाल हुआ है। बड़े बड़े आलिमों की तहरीरों में इसके इस अर्थ में स्तेमाल के उदाहरण मौजूद हैं। अबुबक्र जसास *अहकामुल क़ुरआन* में लिखते हैः

''इसलिए कि 'इहसान' एक इस्मे मुश्तरक है जो कई अलग अलग अर्थ रखता है।'' (2/164)

चौथा एअतराज़ यह हैः

यह बात कि 'तक़तील' का अर्थ हैः सबक़ सिखाने वाले अंदाज़ में क़त्ल करना और चूंकि रजम भी लोगों को डरा देने वाले क़त्ल का एक तरीक़ा है इसलिए वह भी तक़तील में शामिल है, बिल्कुल ग़लत और न समझ में आने वाली बात है। इसलिए कि तक़तील इबरतनाक (डरा देने या सबक़ सिखाने वाले) क़त्ल को

नहीं कहते। शब्द तक़तील क़त्ल से बाब तफ़ईल का मसदर ह और बाब तफ़ईल की ख़ासियत तकसीर है और ज़ाहिर है कि क़त्ल करने के क्रिया की तकसीर (बहुवचन) बिला वास्ता (अप्रत्यक्ष रुप से) कल्पना करने वाली बात नहीं, बल्कि बिलवास्ता (प्रत्यक्ष रुप से) क़त्ल होने वाले की तकसीर साबित़ हो सकती है, यानि क़त्ल हाने वालों की गिनती के संदर्भ में क़त्ल की क्रिया को बहुवचन में ला सकते हैं।''

मौलाना का यह ऐतिराज़ सही है। सेबूया ने जब से अपनी किताब में यह जुमला लिखा है कि ''*फ़इज़ा अरदतु कसरतुल अमल क़िल्लत कस्सरतहु*''[39], ग्रामर के जानकार आम तौर से बाब तफ़ईल की ख़ासयितों की बहस तकसीर पर ख़त्म कर देते हैं, लेकिन कुरआन और अरब शायरों के कलाम से पता चलता ह कि तफ़ईल फ़अल के अर्थ में जिस तरह तकसीर के लिए आता है, उसी तरह वक़ूअ फ़अल में शिद्दत और मुबालिग़ा की ताबीर के लिए भी यह अरबी भाषा में स्तेमाल होता है[40]।

39. 4/175 – जब तुम किसी काम के घटित होने का बहुवचन स्तेमाल करते हो तो ''तशदीद'' (ठहर कर ज़ोर देने का चिन्ह) स्तेमाल करते हो।

40. यह ख़ासियत कुछ विषय विशेषज्ञों ने भी बयान की है।

अबु ज़ुवेब हज़ली का शेअर हैः

''मैं ने उसे पाया जो मसद के रेगिस्तानों की तेज़ बिजलियों वाले शेरों से भी मज़बूत है जिसकी पकड़ बेबस कर देने वाली, फिर बुरी तरह पटख़ देने वाली है।''

इसमे देखिए शायर ने 'तरह' के बजाए 'ततरीह' का शब्द फैंक देने या पटख़ देने की शिद्दत को बयान करने के लिए स्तेमाल किया है। शेअर का मतलब इस बात से इंकार करता है कि यहां इस शब्द को बहुवचन के अर्थ में लिया जाए।

हजल बिन नज़ला अपनी ज़िरह की तारीफ़ में कहता है

''मेरे नीचे सफ़ेद माथे वाला घोड़ा और मेरे शरीर पर बड़े मज़बूत छल्लों वाली ज़िरह है जो तलवार को इस तरह लोटा देती है कि उसकी धार बुरी तरह टूट चुकी होती है।''

इस शेअर में भी 'फ़ल' के बजाए 'तफ़लील' मुबालग़ा (अतिश्योक्ति) और शिद्दत (ज़ोर देने) के लिए आया है। ज़िरह की ख़ासियत यही है कि तलवार उस पर पड़ने के बाद फिर वार के लायक़ ही न रहे। इसके लिए बहुत ज़्यादा टूट जाने का अर्थ लेना उपयुक्त नहीं हो सकता।

मुतम्मिम बिन नवीरा अपनी ऊंटनी की तारीफ़ में कहता हैः

''एक तेज़ रफ़्तार मोटी ऊंटनी के साथ जिसका कोहान मानो एक ऊंचा महल है जिसके चारों तरफ़ बत क़ौम के लोग फिरते हैं''

यहां भी 'मरकूअ' के बजाए 'मुरक्क़अ' मुबालग़े के लिए आया है।

मुतलमिस का शेअर है

''निआमा, जब दुशमन ने उसकी पार्टी को पछाड़ दिया तो वह कैसा अजीब लिबास पहन कर सामने आया''

इस शेअर में जिस पार्टी का ज़िक्र है उसे तलवारों से पछ़ाड़ दिया गया था यह अतिश्योक्ति और ज़ोर देकर बात कहने का तरीक़ा है, इसलिए साफ़ है 'तसरीअ' (पछाड़ना) बहुत ज़्यादा पछाड़ने के अर्थ में नहीं हो सकता।

उम्मे क़ैसे कहती है

'तूने हिफ़ाज़ और बचाव के समय अपनी उत्कृष्ट भाषा और निडर दिल के साथ उसकी हर गांठ पूरी तरह खोल कर रख दी।''

यहां भी मुबालग़ा (अतिश्योक्ति) है बहुवचन नहीं है तफ़रीज का अर्थ पूरी तरह खोल देना ही होगा।

इसी तरह 'तक़तील' शब्द का मतलब बुरी तरह मारना होता है।

कुरआन में है

''उन पर लानत की बौछार होगी जहां कहीं मिलेंगे पकड़े जाएंगे और बुरी तरह क़त्ल किए जाएंगे।'' (33:61)

इस आयत को सूरह अहज़ाब में देखिये, इसका परिप्रेक्ष्य और इसके शब्दों की सख़्ती साफ़ बता रही है कि इसमें क़त्ल पर ज़ोर शिद्दत और मुबालग़े के लिए है और क़त्ल के लिए *''क़ुत्तिलू तक़तीला''* ज़ोर देने के लिए आया है, यहां इसका मतलब यह नहीं होगा कि गिनती में बहुत बार क़त्ल किए जाएंगे।

उम्राउल क़ैस की मुअल्लक़ा में हैः

''तेरी आंखों ने सिर्फ़ इसलिए आंसू बहाए कि तू अपने इन दो तीरों से दिल के टुकड़ों को छलनी कर दे''

यहां ''क़ल्बे मुक़त्तल'' (टुकड़े टुकड़े दिल) का शब्द स्तेमाल हुआ है जिसको हमने उर्दू में दिल–ए–पाएमाल लिखा है। हर वह जानने वाला समझ लेगा कि इस शेअर में इस शब्द को इसी अर्थ में स्तेमाल किया गया है।

कुरआन और अरब शायरों के कलाम की इन मिसालों से यह स्पष्ट होता है कि मायदा की आयत 33 में *''अंय्युक़त्तलू''* 'क़त्ल' के बजाए अगर 'तक़तील' से आया है तो यह कोई बेमक़सद बात नहीं है। यह तब्दीली अर्थ में ज़ोर देने के मक़सद से हुई है, और आयत का मतलब यह है कि अर्थ में ज़ोर और मुबालग़ा लिया जाए। इस वजह से इसका यह अनुवाद कि ''ज़मीन में फ़साद मचाने के मुजरिमों को भयानक तरीक़े से क़त्ल किया जाए'', अरबी नियम के लिहाज़ से ठीक है।

मौलाना अबु शुऐब सफ़दर अली के ऐतिराज़

मौलाना अबु शुऐब ने ग्रामर सम्बंधी हमारी बातों पर केवल दो ऐतिराज़ किए हैः

उनका पहला ऐतिराज़ सूरह निसा की आयत ''*मोहसानतिन ग़ैयरः मुसाफ़िहातिन*'' (4:5)में 'मोहसनात' शब्द के अर्थ के बारे में हमारी उस विवेचना पर है जो इससे पहले इसी सिलसिले की बहस मे हुई है।

दूसरा ऐतिराज़ उन्हें उबादा बिन सामित की मशहूर रिवायत ''अलबक्र बिलबक्र ....'' में हर्फ़ 'वाव' (व अक्षर) के सम्बंध में उस्ताद अमीन अहसन इस्लाही की उस राय पर है जो उनकी तफ़सीर *तदब्बुर–ए–कुरआन* में इस तरह बयान हुई हैः

''इस रोशनी में अगर उबादा बिन सामित की रिवायत को मानने के लिए तर्क दिया जाए तो उसका भी औचित्य और अवसर निकल आता है, वह इस तरह कि उसमें जो 'व' अक्षर है उसको जोड़ के बजाए विभाजन के अर्थ में लीजिए (5:374)।

अपने इस ऐतिराज़ समझाने के लिए उन्होंने लिखा हैः

''यही हदीस (उबादा बिन सामित की उक्त रिवायत) है जिसके बारे में यह बात कही जा रही है कि उसमें मौजूद 'व' अक्षर को जमा (जोड़) के बजाए तक़सीम (विभाजन) के अर्थ में लिया जाए तो बात साफ़ हो जाती है कि ज़िना अपराधी चाहे विवाहित हो या अविवाहित, उसकी असिल सज़ा तो '*जल्द*' यानी कोड़े लगाना ही है, लेकिन आयत (5:33) के तहत शासन को यह अधिकार हासिल है कि कुंवारा अगर कोड़े की सज़ा से क़ाबू में नहीं आ रहा हो तो उसे एक साल के लिए देस से निकाल दिया जाए और अगर विवाहित ज़िना अपराधी कोड़े की सज़ा से क़ाबू में न आ रहा हो राज्य शासन को यह अधिकार है कि उसे इसी आयत के तहत रजम करा दे। लेकिन कुछ कारण ऐसे हैं जो 'व' अक्षर को जोड़ के बजाए विभाजन के अर्थ में लेने में रुकावट हैं।

1. उबादह बिन सामित की एक रिवायत में तो 'व' अक्षर मौजूद है जबकि दूसरी रिवायत में उनके ये शब्द नक़ल हुए हैः

''विवाहित को सौ कोड़े मारे जाएं। फिर पत्थरों से रजम करते हुए मार दिया जाए और कुंवारे को सौ कोड़े मारे जाएं। फिर एक साल के निर्वासित कर दिया जाए'' (अहमद, 22633)।

इस रिवायत से साफ़ हो जाता है कि पहली रिवायत में व अक्षर जमा (जोड़) के अर्थ में ही है।

2. इस रिवायत में इसे तक़सीम (विभाजन) के अर्थ में लिया जाए तो हदीस का मतलब होगाः ''कुंवारे को सौ कोड़े या एक साल के लिए देसनिकाला की सज़ा दी जाए और विवाहित को सौ कोड़े या रजम की सज़ा दी जाए।''

इस स्थिति में हदीस से न केवल विवाहित बल्कि अविवाहित के बारे में भी सूरह नूर की आयत को मंसूख़ (रद) मानना पड़ेगा[43] ।

43. ज़ानी मोहसन की सज़ा, अलऐअलाम, अंक 8/27

मौलाना का यह ऐतिराज़ बात को न समझ पाने की एक मिसाल है। उस्ताद इमाम ने यह बात कहीं नहीं कही कि उबादह बिन सामित की रिवायत में 'व' अक्षर ''तख़यीर'' के लिए आया है। उस्ताद ने इसे ''तक़सीम'' के अर्थ में माना है। तक़सीम और तख़यीर में बहुत फ़र्क़ है। ये दोनों शब्द न तो शाब्दिक रूप से और न शब्दावली के रूप में, एक अर्थ के लिए नहीं बोले जाते। मौलाना शुऐब ने हदीस का जो मतलब

बयान किया है उसके लिए 'तक़सीम' का नहीं 'तख़यीर' का शब्द स्तेमाल किया जाता है। इस अर्थ के लिहाज़ से तो बेशक यह बात सही है कि हदीस से न केवल शादीशुदा बल्कि ग़ैर शादीशुदा (कुंवारे) के बारे में भी सूरह नूर की आयत के आदेश को रद मानना पड़ेगा, लेकिन उस्ताद अमीन अहसन इस्लाही के नज़दीक *अलबक्र बिल बक्र जल्द मिअत:, व तग़रीब आम* की 'वाव' (व अक्षर) तख़यीर के लिए नहीं है। उनके नज़दीक यह तक़सीम की 'वाव' है और उन्होंने इसका जो मतलब बयान किया है वह उनके अपने शब्दों में यह है:

''यानी कोई ज़िना अपराधी कुंवारा हो या शादीशुदा दोनों की असिल सज़ा तो जल्द (कोड़ा) ही है लेकिन अगर कोई कुंवारा कोड़े की सज़ा से क़ाबू में न आ रहा हो तो सरकार, अगर उचित समझे, मायदा की उपरोक्त आयत (33) के अनुसार देसनिकाला की सज़ा भी दे सकती है। इसलिए कि इस आयत में ''*नफ़ी*'' (जिला वतनी या देसनिकाला) का अधिकार भी शासन को दिया गया है। इसी तरह विवाहित ज़िना अपराधी की असिल सज़ा, जैसा कि रिवायत से स्पष्ट है, है तो कोड़े मारना ही लेकिन अगर कोई व्यक्ति कोड़े खा कर भी क़ाबू में नहीं आ रहा हो और समाज के लिए एक ख़तरा बन चुका हो तो उसको हुकूमत सूरह मायदा की आयत 33 के हिसाब से ''तक़तील'' यानी रजम की सज़ा देने का भी अधिकार रखती है (*तदब्बुर–ए–कुरआन* 5/374)। यह अर्थ है जिसके लिए उस्ताद इस्लाही ने तक़सीम का शब्द स्तेमाल किया है। इब्ने हश्शाम ने अरबी ज़बान के हुरूफ़ (अक्षरों) पर अपनी मशहूर किताब ''*मुग़नी अल्लबीब*'' में इसको इस तरह के अर्थ के लिए लिया है। मौलाना शुएब की ख़िदमत में माफ़ी के साथ यह कहना है कि वह अगर तक़सीम व तख़यीर के फ़र्क़ को भी नहीं जानते थे तो उनके लिए इस तरह की परिचर्चाओं पर क़लम उठाने से बचना ही बहतर था। वह देख सकते हैं कि उनका ऐतिराज़ ख़ुद उनके अपने बनाए हुए अर्थ पर तो लागू होता है लेकिन उस्ताद इस्लाही की राय से इसका कोई सम्बंध नहीं है।

यहां यह बात भी स्पष्ट रहना चाहिए कि इस हदीस का जो मतलब उस्ताद अमीन अहसन इस्लाही ने बयान किया वह अरबी नियम के हिसाब से बिल्कुल ठीक है। हम पूरे विश्वास के साथ कह सकते हैं कि वाव हर्फ़ (व अक्षर) अरबी भाषा में इस अर्थ के लिए स्तेमाल होता है। इसकी नज़ीरें कुरआन में भी हैं और अरब शायरों के कलाम में भी। हम यहां केवल कुरआन से कुछ मिसालें देंगे।

''*और जिन औरतों से तुम्हें सरकशी की आशंका हो उन्हें समझाओ और उनको बिस्तरों पर अकेला छोड़ दो और उन्हें मारो* (4:34

इस आयत में सरकश (अड़ियल) पत्नियों के सुधार के लिए तीन उपाय अपनाने का निर्देश दिया गया है: एक यह कि उन्हें नसीहत की जाए, समझाया जाए, दूसरा यह कि उन्हें बिस्तरों में अकेला छोड़ दिया जाए और तीसरा यह कि उन्हें सज़ा दी जाए। ये तीनों उपाय 'वाव' हर्फ़ के साथ एक के बाद एक बयान हुए हैं। अरबी जानने वाला हर व्यक्ति यह समझ सकता है कि:

1. ये तीनों उपाय एक ही समय नहीं अपनाए जाएंगे, बल्कि पहले नसीहत और समझाने बुझाने डराने का उपाय करके उसे सुधारने की कोशश की जाएगी। इससे अगर बात न बने तो पत्नि से दूरी बनाई जाएगी, इस से भी अगर पत्नि का सुधार न हो तो पति को मारने की इजाज़त दी गयी है।

2. ज़रूरी नहीं कि यह तीनों उपाय अपनाए जाएं। नसीहत और समझाना तो हर हाल में एक ज़रूरी चीज़ है लेकिन मिलने से दूरी उन्ही औरतों से की जाएगी जो समझाने और नसीहत करने का कोई असर न लें, और पिटाई उनकी ही लगेगी जो पिटे बग़ैर ठीक ही न हो सकती हों।

इन तीनों उपायों में यह तक़सीम नतीजे के लिहाज़ से है, यानि एक उपाय कारगर न हो तो दूसरा, दूसरा न हो तो तीसरा उपाय अपनाया जाए। उबादह बिन सामित की रिवायत में उस्ताद इस्लाही ने ठीक यही अर्थ लिया है। अरबी भाषा में इस अर्थ को आम तौर से ''*सुम्मा*'' से समझा जाता है। ज़मख़शरी सूरह निसा की उपरोक्त आयत की तफ़सीर में लिखते हैः

पहले उन्हें नसीहत करने का हुक्म दिया गया, फिर सम्बंध छोड़ने का निर्देश दिया गया और इसके बाद अगर नसीहत और सम्बंधों में दूरी दोनों से काम न बने तो उनको मारने की इजाज़त दी गयी। (अलकशाफ़ 1/539)। इसमें ज़मख़शरी ने 'और' के लिए बार बार 'सुम्मा' शब्द स्तेमाल किया है इससे स्पष्ट होता है कि इस अर्थ के लिए 'व' से ज़्यादा साफ़ मतलब 'सुम्मा' का है। यही वजह है कि उबादह बिन सामित की रिवायत के एक दूसरे तरीक़ में 'व' के बजाए यही 'सुम्मा' स्तेमाल हुआ है। ऐतिराज़ करने वाले साहब ने इसे अपने दृष्टिकोण के समर्थन में पेश किया है। हालांकि इसी से उनके दृष्टिकोण की तरदीद होती है।

यहां तक हमने अपने उस्ताद इमाम अमीन अहसन इस्लाही के दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। हमारी राय इस रिवायत के बारे में इमाम की राय से अलग है। मेरे नज़दीक इस रिवायत के शब्दों से ही साफ़ है कि इसमें जो सज़ाएं बयान हुई हैं वो उन कुकर्मियों के लिए हैं जिनका ज़िक्र सूरह निसा की आयत 15–16 में हुआ है। आयत के शब्द खुद इस बात की दलील हैं कि इसका हुक्म दो तरह के अपराधियों के बारे में हैः एक वो औरतें जो वैश्यागीरी करती थीं, दूसरे वो मर्द व औरतें जिनका नाजायज़ सम्बंध यारी बाज़ी से शुरू हो कर रोज़ का मामूल बन गया था। कुरआन ने इसके लिए ''*वल्लाती यातीन अलफ़ाहिशतः*'' (वो औरतें जो बुरा काम करती है) और ''*वल्लज़ानि यातियानिहा*'' (वो मर्द व औरत जो कुकर्म करते हैं) के शब्द स्तेमाल किए हैं। बदकारी या कुकर्म के यही दो तरीक़े हैं जिनके लिए कुरान की कुछ दूसरी आयतों में ''*मुसाफ़िहातिन*'' (खुले आम दुष्कर्म करने वालियां) और ''*मुत्तख़ज़ाति अख़दान*'' (याराना गांठने वाली) के शब्द स्तेमाल किये गए हैं। इन शब्दों से साफ़ है कि ये वो अपराधी नहीं हैं जो किसी समय भावनाओं में बह कर ज़िना का अपराध कर बैठें और जिनकी सज़ा सूरह नूर की आयत में बयान की गयी है। ज़िना के ये आदी मुजरिम अपने सरदारों के इस्लाम कुबूल कर लेने की वजह से या दुनिया के फ़ायदों को देखते हुए इस्लाम में दाख़लि हुए और फिर भी अपनी पुरानी हरकतों से बाज़ नहीं आए तो सूरह निसा की इस आयत में उनके बारे में निम्नलिखित निर्देश दिए गएः

''कुकर्मी चरित्र रखने वाली औरतों को घरों में बन्द कर दिया जाए, यहां तक कि मौत उनके अस्तित्व से समाज को पाक कर दे या अल्लाह की तरफ़ से उनके लिए कोई और निर्देश उतरे।''

2. यारी बाज़ी करने वाले मर्द व औरत को पीटा जाए फिर अगर वो सुधर जाएं तो उन्हें छोड़ दिया जाए, वरना उनके बारे में भी अल्लाह के निर्देश का इंतेज़ार किया जाए।

इन निर्देशों से साफ़ है कि इनका सम्बंध अन्तरिम काल से था। चुनांचि उबादह बिन सामित की रिवायत का संदेश हक़ीक़त में यही है कि बाद में पैग़म्बर सल्ल. को ख़ुफ़िया वह्यि के द्वारा हिदायत की गयी कि ये चूंकि केवल ज़िना के ही अपराधी नहीं हैं बल्कि इसके अलावा आवारगर्दी, बदमाशी और यौन दुराचार की

वजह से ''*फ़साद फ़िल अर्ज़*'' (ज़मीन में उत्पात मचाने) के मुजरिम भी हैं इसलिए उनमें से ऐसे मुजरिमों को जो अपनी स्थिति के हिसाब रिआयत (छूट) के हक़दार हों ज़िना के अपराध में सूरह नूर की आयत 2 के तहत सौ कोड़े और समाज को उनकी अराजकता और चरित्रहीनता से बचाने के लिए उनकी बदमाशी के चलते सूरह मायदा की आयत 33 के तहत जिला वतनी (देस निकाला) की सज़ा दी जाए और उनमें वो अपराधी जिन्हें कोई छूट देना मुमकिन न हो मायदा की इसी आयत के तहत रजम कर दिए जाएं।

रजम के साथ इस रिवायत में सौ कोड़े की सज़ा भी बयान हुई है लेकिन हमारे नज़दीक यह केवल क़ानून को समझाने के लिए है। रिवायत से साबित होता है कि पैग़म्बर सल्ल. ने रजम के साथ ज़िना के अपराध में किसी को कोड़े की सज़ा नहीं दी। इस की वजह यह है कि मौत की सज़ा के साथ किसी और सज़ा का जमा करना क़ानून की हिकमत के विपरीत है। क़ानून की यह हिकमत (युक्ति) इस्लामी शरीअत में पूरी तरह बरती गयी है और इस्लामी शरीअत के अलावा दुनिया के दूसरे सभ्य क़ानूनों में भी इसका ध्यान रखा गया है। क़ैद में डालना, कोड़े लगाना, जुर्माना लगाना जैसी सभी सज़ाओं में दो मक़सद सामने रखे जाते हैं। एक समाज को सबक़ देना और क़ानून का डर पैदा करना और दूसरे अपराधी को आगे के लिए अपराध से दूर रहने की सीख देना। मृत्यू दण्ड में अपराधी के लिए आगे से अपराध न करन की चेतावनी की कोई ज़रूरत नहीं रहती। इस वजह से जब विभिन्न अपराधों में किसी व्यक्ति को सज़ा देना होती है और उनमें से किसी अपराध की सज़ा मौत भी होती है तो बाक़ी सभी सज़ाएं छोड़ दी जाती हैं और केवल मृत्यू दण्ड दिया जाता है।

इस विवेचना की रोशनी में देखिए, रिवायत में सज़ाओं की तक़सीम नतीजे के रूप में नहीं, अपराध के लिहाज़ से है। यानी एक ही व्यक्ति ज़िना के साथ गुण्डागर्दी का भी मुजरिम है तो उसे इस रिवायत के अनुसार दोनों सज़ाओं का पात्र माना जाएगा। इस तरह सज़ाएं अपराधी के लिहाज़ से जमा होंगी और अपराधों के लिहाज़ से तक़सीम होंगी। हमारे नज़दीक अरबी नियम के हिसाब से 'व' अक्षर और 'सुम्मा' शब्द दोनों इस अर्थ के लिए बिल्कुल उपयुक्त हैं। मौलाना अगर चाहें तो हम इसकी मिसालें और नज़ीरें भी उनके लिए पेश कर देंगे।

अब रहा मौलाना साहब का पहला ऐतिराज़ जो शब्द 'मोहसनात' के अर्थ के बारे में हमारी राय पर उन्होंने किया है तो इसके जवाब में हम अपना वह लेख यहां नक़ल किए देते हैं जो ''*अलएअलाम*'' के अंक 4 में उनके लेख ''ज़ानी मोहसन की सज़ा'' के छपने के बाद इसी मैगज़ीन के अंक 5 में प्रकाशित हुआ था।

यह लेख निम्न लिखित हैः

मेरे मोहतरम दोस्त मौलाना शुऐब सफ़दर अली ने 'ज़ानी मोहसन की सज़ा' के शीर्षक से जो मज़मून लिखा है उसकी प्रशंसा तो कुछ वही लोग कर सकते हैं जिन्हें अरब शैलियों के अध्ययन में अपने बाल सफ़ेद करने के बाद जीवन में पहली बार इस तहरीर से अरबी ग्राम के बारे में हैरत अंगेज़ बातों को जानने का मौक़ा मिला है। आप इस बात की कल्पना ही कर सकते हैं कि लेखक के शोध व खोज से बाख़बर होने के बाद अरबी भाषा में लाम तअरीफ़ का एक ऐसा रूप भी पाया जाता है जो अगर किसी शब्द के साथ मिल जाए तो उसके व्यापक अर्थ में पागल, ना बालिग़ और मजबूर का शामिल होना मना हो जाता है, इन भाषाविदों ने अपनी क़िस्मत की महरूमी पर किस किस तरह से अफ़सोस किया होगा। यह क्या कोई मामूली बात है कि जिस मुद्दे की खोज में शातिबी ने अपनी किताब *अलमुवाफ़िक़ात* के दसयों पेज काले कर दिए हमारे शोधकर्ता ने केवल एक लाइन मं उसे हमेशा के लिए हल कर दिया है।

लेखक महोदय ने अनोखी बातों का यह संग्रह मेरे ही एक मज़मून के रद में जमा किया है। फिर वह मेरे बहुत अज़ीज़ दोस्त भी हैं। मुनासिब तो यह है कि उनकी हर बात का पूरा जवाब दिया जाए, लेकिन फ़िलहाल केवल दो बातों का जवाब ही लिख रहा हूं क्योंकि इन दो बातों पर ही उन्होंने अपना सारा ज़ोर लगा दिया है।

1. अपने लेख के पहले आधे हिस्से में उन्होंने इस पर चर्चा की है कि अरबी ज़बान का विशेषण 'मोहसनात' क्या लौण्डियों के लिए स्तेमाल हो सकता है। मौलाना ने इस मुददे की खोज में अरबी की सारी डिक्शनरियां खंगाल डाली हैं। क्या लिसानुल अरब और क्या जोहरी व सराह हर एक से कितने ही अवतरण अपने लेख में दिए हैं। शब्द के मूल का पता लगा कर उसके मूल अर्थ को ढूंढने का प्रयास किया है। उसके अलग अलग रूप में स्तेमाल को तय किया है। अरबों के कलाम के हवाले से प्राचीन अरब में लौण्डियों और आज़ाद औरतों की सामाजिक प्रतिष्ठा के अन्तर को स्पष्ट किया है। संरक्षित औरतों और पाक दामन औरतों का जिक्र करने के लिए अरबी भाषा में अलग अलग शैलियों व शब्दों के स्तेमाल पर कुरआन की बहुत सी आयतों की मिसाल दी है। ग़रज़ यह है कि सच्चाई की लैला को खोजने के लिए सब कुछ कर डाला है।

लेकिन मज़मून के इस हिस्से में जो बात इन सब खोजों पर भारी है वह इस सारे शोध का नतीजा है। वह फ़रमाते हैं कि अरबों के कलाम और कुरआन की भाषा शैली को समझने की कोशिश से यही मालूम होता है कि शब्द 'मोहसनात' असिल में तो लौण्डियों के लिए स्तेमाल ही नहीं होता। लेकिन अज़हरी ने उन्हें ख़बर दी है कि लौण्डिया अगर आज़ाद कर दी जाएं य उनसे शादी हो जाए या वो इस्लाम कुबूल कर लें तो उनके लिए भी इस शब्द का स्तेमाल जायज़ है।

मौलाना ने यह नतीजा निकालने के लिए जो मेहनत की है उसकी तारीफ़ हम उपर कर चुके हैं लेकिन इस नतीजे को जिस चीज़ ने क्लासिक का दर्जा दिया है वह यह है कि शोधकर्ता ने सूरह निसा की जिस आयत में 'मोहसनात' शब्द का अर्थ सुनिश्चित करने के लिए यह सब उतार चढ़ाव तय किए हैं वह खुद अपने आप में इस बात पर हुज्जत हैं कि यह शब्द बेशक लौण्डियों के लिए स्थाई गुण के रूप में तो अरबी भाषा मे स्तेमाल नहीं होते, लेकिन सभी गुण नामों की तरह ये जिन गुणों के लिए दलील बनता है वह अगर लौण्डिया भी अपने अन्दर पैदा कर लें तो यह उनके लिए भी उसी तरह स्तेमाल हो सकता है, जिस तरह आज़ाद औरतों के लिए स्तेमाल होता है। कुरआन ने इस आयत में इसे उन गुणों के लिए ही स्तेमाल किया है। शब्द के स्तेमाल पर आयत की यह दलील ऐसी साफ़ है कि कुरआन का आम पाठक भी इसे आसानी से समझ लेता है। हैरत है कि मौलाना की नज़र इस पर नहीं गयी हालांकि एक जगह उन्हों ने यह माना भी है कि यह शब्द यहां लौण्डियों के लिए स्तेमाल हुआ है।

कुरआन की इस आयत पर भी नज़र कीजिएः

''और जो तुम में से इतनी क्षमता न रखत हो कि आज़ाद मोमिन औरतों से निकाह कर सके तो वह उन मोमिन लौण्डियों से निकाह कर ले जो तुम्हारे क़ब्ज़े हों। अल्लाह तुम्हारे ईमान को खूब जानते हैं। तुम सब एक ही जिंस से हो, तो इन लौण्डियों से निकाह कर लो, उनके मालिकों की इजाज़त से और रीति के अनुसार उनके महर अद करो, इस हाल में कि वो मोहसनात हों, खुले आम बदकारी करने वाली न हों और न चोरी छुपे याराना करने वाली हों।'' (4:25)।

इसमें 'मोहसनात' शब्द साफ़ तौर से लौण्डियों के लिए स्तेमाल हुआ है लेकिन पता नहीं क्यों मौलाना ने इस आयत को नज़र अंदाज़ कर दिया और 'मोहसनात' शब्द के स्तेमाल पर इस साफ़ मिसाल को तर्क का आधार बनाने के बजाए दूसरी भूल भुलइयों में क्यों खोए रहे।

अपने लेख के दूसरे हिस्से में मौलाना ने हमारे उस दृष्टिकोण को रद किया है जो हमने सूरह निसा की उपरोक्त आयत मोहसनात शब्द के बारे में प्रस्तुत किया है। हम ने यह विचार व्यक्त किया है इस आयत में शब्द मोहसनात पाक दामन औरतों के लिए स्तेमाल हुआ है, विवाहित औरतों के लिए नहीं हुआ है। अपने इस विचार के समर्थन में हमने जो तर्क दिए थे, उनके में एक तर्क यह था कि मोहसनात का शब्द यहां अकेले नहीं आया है बल्कि 'मुसाफ़िहात' की तुलना में आया है और बिल्कुल उसी तरह स्तेमाल हुआ है जैसे हम बोलते हैं '*हुवा आलिम लैस बिजाहिल*' (वह आलिम है, जाहिल नहीं है), इसलिए भाषा के इस नियम के हिसाब से शब्द जब इस तरह के किसी जुमले में आता है तो इसका अर्थ उसकी तुलना में आने वाले शब्द से निर्धारित हो जाता है। मोहसनात शब्द भी यहां पाक दामन औरतों के अलावा अब किसी और अर्थ में नहीं लिया जा सकता क्योंकि इसकी तुलना मुसाफ़िहातिन (बदकारी करने वालियां) से की गयी है और बदकारी का उलटा पाकदामन होना ही होता है।

मौलाना ने यह नियम तो बग़ैर किसी ऐचपेच के मान लिया है जिस पर यह तर्क दिया गया है और जिसका स्पष्टीकरण अभी हमने उपर के पेराग्राफ़ में किया है, लेकिन इस नियम से जो नतीजा निकलता है वह उससे सहमत नहीं होना चाहते इसलिए उन्होंने मुसाफ़िहात शब्द के अर्थ को समझाने पर ज़ोर लगाया है। उन्होंने पहले अरबी भाषा के नामों में 'मुसाफ़िहात' का मुक़ाम तय किया है। इस शब्द के मूल पर चर्चा की है, ज़िना, फ़ाहिशा और सफ़्फ़ाह को अलग अलग किन किन जगहों पर कैसे स्तेमाल किया जाता है यह समझाया है और इसका फ़र्क़ बताया है। *लिसानुल अरब* और *ताजुलउरूस* के हवाले दिए हैं। अहमद बिन हंबल की मुस्नद से तीन हदीसें पेश की हैं और यह नतीजा निकाला है कि 'मुसाफ़िहात' का शब्द अरबी भाषा में 'बदकारी करने वाली' के अर्थ में नहीं है बल्कि 'बग़ैर निकाह के किसी की पत्नि बन कर रहने और फिर किसी समय अपनी मर्ज़ी से अलग हो जाने वाली' के अर्थ में स्तेमाल होता है, इसलिए यह बात बिल्कुल निश्चित है कि ''निसा'' की इस आयत में मोहसनात शब्द मुसाफ़िहात की तुलना में होने की वजह से 'निकाह में महफ़ूज़ होने वालिया' के अर्थ मे होगा, इसे पाक दामन औरतों के अर्थ में लेना किसी तरह ठीक नहीं है।

मौलाना ने अपने इस शोध का यह नतीजा भी पहले वाले तरीक़े पर ही निकाला है, बहुत सारी इधर उधर की बातों में वक़्त लगाया है लेकिन उस ख़ास कलाम को नज़र अंदाज़ कर दिया जो सबसे प्रमाणित स्रोत है। उनहोंने इमाम अहमद बिन हंबल की मुस्नद में हदीसे खोजने में तो बहुत मेहनत की लेकिन उस आयत पर ध्यान नहीं दिया जो इस विषय को समझने में उनके सामने बार बार आती रही होगी और जिसमें मोहसनात की तुलना जिस तरह मुसाफ़िहात से की गयी है उसी तरह मुसाफ़िहात की तुलना के लिए मुत्तख़ज़ाति अख़दान शब्द स्तेमाल किया गया है।

मौलाना इस बात को मानते हैं कि दीन की तरह ज़बान के मामले भी में क़ुरआन की हुज्जत और सनद के सामने किसी और चीज़ की सनद का कोई महत्व नहीं है। फिर भी पता नहीं उन्होंने यह क्यों नहीं सोचा कि ''*मुत्तख़ज़ाति अख़दान*'' का अर्थ जब 'चोरी छिपे याराना करने वालियां' है तो ''*मोहसनातिन ग़ैयरा मुसाफ़िहातिन व ला मुत्तख़ज़ाति अख़दान*'' में 'मुसाफ़िहात' शब्द उसकी तुलना में आने की वजह से 'खुले आम बदकारी करने वालियां' के अर्थ में होगा, और जब 'चोरी छिपे याराना करने वालियां' और 'खुले आम

बदकारियां करने वालिया' के शब्द 'मोहसनात' के मुक़ाबले में आएंगे तो उसी सिद्धांत के हिसाब से जिसे मौलाना मान चुके हैं, इसका अर्थ यहां पाक दामन औरतें निश्चित रूप से होगा इसके लिए किसी तर्क की ज़रूरीत नहीं पड़ेगी। मानो वही शैली होगी जो इस्लाम पूर्व युग के शायर इब्ने अक़ील ने अपने इस शेअर में अपनाई हैः

''पाकीज़ा चरित्र वाली औरतों से, जो न बदसूरत हैं, न अखड़पन रखने वाली और न खुलेआम बदकारी करने वाली, न छुप छुपा कर''।

लेकिन कुरआन की उपरोक्त आयत पर मौलाना की खोजी नज़र क्यों नहीं पड़ी? उन्होंने कुरआन की इस आयत को दलील बनाने के बजाए *लिसानुल अरब, सिहाह सित्ता* और दूसरी किताबों की मदद से अपनी दलील पेश की और इस सफ़ाई के साथ पेश की कि उनके नज़दीक *अलकशाफ़* में ज़मख़शरी ने भी 'मोहसनात' का मतलब 'निकाह में महफ़ूज़ होने वालियां' ही बयान किया हैः

मोहसनातः पाकदामन औरतें, *अलअख़दानः* चोरी छुपे के यार, यानी आयत का मतलब है न खुलेआम बदकारी करने वालियां न छुपा कर।

मौलाना का लेख *''अलएअलाम''* में छपने के बाद हमने उसके बारे में अपनी वह सारी टिप्पणियां उनके सामने पेश कर दीं जिनका एक हिस्सा उपर बयान हुआ है और उनसे गुज़ारिश की कि वह अगर इनके जवाब में कुछ कहना चाहते हैं तो कहें लेकिन उन्होंने मान लिया कि उनके पास जवाब में कहने के लिए कुछ नहीं है।

1982